ऋग्वेद ओ३म् यजुर्वेद

पवमान

वर्ष : 34 पौष-माघ वि0स0 2078 अंक : 1 जनवरी 2022

मुद्रकः सरस्वती प्रेस, देहरादून वजनः 50 ग्राम

वैदिक साधन आश्रम तपोवन देहरादून
की ओर से
गणतन्त्र दिवस
की हार्दिक शुभकामनाएं

23 जनवरी
नेता जी सुभाष चन्द्र बोस के
जन्म दिवस पर सादर नमन्

वैदिक साधन आश्रम तपोवन, नालापानी, देहरादून-248008

सामवेद अथर्ववेद

पवमान पत्रिका हमारी वेबसाइट www.vaidicsadhanashramdehradun.com पर भी उपलब्ध है।

वैदिक साधन आश्रम तपोवन

नालापानी देहरादून उत्तराखण्ड़–248008
दूरभाष–0135–2787001

आत्मकल्याण का स्वर्णिम अवसर

चतुर्वेद शतकम् एवं गायत्री यज्ञ का विशेष आयोजन

तदनुसारेण दिनांक - 9 मार्च 2022 (बुधवार) से 13 मार्च 2022 (रविवार) तक

यज्ञ के ब्रह्मा - **स्वामी चित्तेश्वरानन्द सरस्वती जी**

वैदिक विद्वान एवं विदुषियाँ - **साध्वी प्रज्ञा जी, श्री महावीर मुमुक्षु जी, आचार्य डा० धनजंय जी, आचार्य डा० अन्नपूर्णा जी, पं० सूरत राम शर्मा जी,**

मंत्रपाठ– श्रीमद् दयानन्द आर्ष ज्योर्तिमठ गुरूकुल पौंधा के ब्रह्मचारियों द्वारा

मान्यवर/महोदय,

सादर् नमस्ते!

आप सब को यह जानकर हर्ष होगा कि पूर्व वर्षों की परम्परा का निर्वहन करते हुए वैदिक साधन आश्रम तपोभूमि (पहाडी पर) चतुर्वेद शतकम् एवं गायत्री यज्ञ का आयोजन करने का निश्चय किया गया है। आपसे प्रार्थना है कि कार्यक्रम में सपरिवार भाग लेकर धर्म लाभ उठायें तथा तन–मन–धन से सहयोग देकर ज्ञानार्जन, यश एवं पुण्य प्राप्त करें।

कार्यक्रम सारणी

योग साधना	:	प्रातः 05:00–6:30
यज्ञ	:	प्रातः 07:00–8:30
प्रातःराश	:	प्रातः 08:30–09:00
प्रवचन	:	प्रातः 09:00–11:30
यज्ञ, एवं प्रवचन	:	साय 03:00–06:00

नोट– (1) आर्यबन्धुओं से अनुरोध है कि वह कोरोना का टीका लगवाकर आयें।
(2) मुँह ढकने के लिए मास्क भी साथ लेकर आयें।

निवेदक

विजय कुमार आर्य	**प्रेम प्रकाश शर्मा**	**अशोक कुमार वर्मा**
अध्यक्ष	सचिव	कोषाध्यक्ष
09837444469	09412051586	09412058879

ओ३म्

पवमान

वर्ष–34 अंक–11–12

पौष–माघ 2078 विक्रमी जनवरी 2022

सृष्टि संवत् 1,96,08,53,122 दयानन्दाब्द : 197

★

–: संरक्षक :–

स्वामी चित्तेश्वरानन्द सरस्वती

मो. : 9410102568

★

–: अध्यक्ष :–

श्री विजय कुमार

मो. : 9837444469

★

–: सचिव :–

प्रेम प्रकाश शर्मा

मो. : 9412051586

★

–: आद्य सम्पादक :–

स्व0 श्री देवदत्त बाली

★

–: मुख्य सम्पादक :–

डॉ० कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री

अवैतनिक

मो. : 9336225967

★

–: सहायक सम्पादक :–

अवैतनिक

मनमोहन कुमार आर्य–

मो. : 9412985121

★

–: कार्यालय :–

वैदिक साधन आश्रम, तपोवन,

तपोवन मार्ग, देहरादून–248008

दूरभाष : 0135–2787001

मोबाईल : 7895978734 (श्री चन्दन सिंह)

Email : vaidicsadanashram88@gmail.com

Web-www.vaidicsadhanashramdehradun.com

विषयानुक्रम

सम्पादकीय	डॉ० कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री	2
वेदामृत	आचार्य डॉ० रामनाथ वेदालंकार	3
महर्षि प्रतिपादित आर्षपाठ हेतु संस्कृत पठन–पाठन की अनुभूत...	डॉ. कृष्ण कान्त वैदिक	4
कैसे हम नूतन वर्ष मनाएं ?	विजय कनौजिया	11
स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती का आर्यसमाज के इतिहास...	मनमोहन कुमार आर्य	12
स्वाभाविक एवं सरल जीवन मार्ग के पथिक बनें	सीताराम गुप्ता	16
मकर संक्रान्ति पर्व कब, क्यों एवं कैसे मनाते हैं	मनमोहन कुमार आर्य	19
मन एक जड़ पदार्थ है और आत्मा चेतन पदार्थ	स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक	22
योगेश्वर महाराज दयानन्द	प्रो. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	23
सब धनों में उत्तम धन "विद्याधन" है, और सब विद्याओं में...	स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक	26
तप क्यों व कैसे ?	डॉ. सत्यदेव सिंह	27
दान दाताओं की सूची		30

वैदिक साधन आश्रम तपोवन, देहरादून के बैंक खातों का विवरण

दान हेतु बैंक खाते का नाम	बैंक का नाम व पता	बैंक अकाउन्ट नं.	IFSC Code
आश्रम को दान देने के लिये			
1. "वैदिक साधन आश्रम"	केनरा बैंक, क्लाक टावर ब्रांच देहरादून	2162101001530	CNRB0002162
पवमान पत्रिका शुल्क			
2. "पवमान"	केनरा बैंक, क्लाक टावर ब्रांच देहरादून	2162101021169	CNRB0002162
तपोवन विद्यानिकेतन स्कूल के लिये			
3. 'तपोवन विद्या निकेतन"	यूनियन बैंक, तपोवन रोड, नालापानी, देहरादून	602402010003171	UBIN0560243

पवमान पत्रिका में विज्ञापन के रेट्स

1. कलर्ड फुल पेज रु. 5000/– प्रति माह
2. ब्लैक एण्ड व्हाईट फुल पेज रु. 2000/– प्रति माह
3. ब्लैक एण्ड व्हाईट हॉफ पेज रु. 1000/– प्रति माह

सदस्यों के लिए पवमान पत्रिका के रेट्स

1. वार्षिक मूल्य रु. 200/– वार्षिक
2. 15 वर्ष (आजीवन) के लिए मूल्य रु. 2000/–

नोटः पवमान पत्रिका फुटकर विक्रय के लिए उपलब्ध नहीं है।

पवमान में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार सम्बन्धित लेखक के हैं। सम्पादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद के प्रतिवाद हेतु न्यायक्षेत्र देहरादून ही होगा। आपत्ति की अवधि प्रकाशन तिथि से एक माह के भीतर ही मानी जायेगी।

सम्पादकीय

महर्षि द्वारा निर्दिष्ट आर्ष–पाठविधि का उद्धार कार्य

पारम्परिक आर्ष वेदज्ञान के अभाव में धर्म का स्वरूप केवल विकृत ही नहीं अपितु अतिशय गर्हित हो गया था। ऋतम्भरा प्रज्ञा से सम्पन्न, प्रज्ञाचक्षु गुरुवर ब्रह्मर्षि विरजानन्द दण्डी जीवन के उत्तरार्ध में पारम्परिक आर्ष वेदज्ञान के पुनरुद्धार तथा स्थापना हेतु राजनीतिक तथा सामाजिक आदि अनेक स्तरों पर प्राणपण से प्रयत्न करते रहे। अन्ततः इसी आर्ष ज्ञान–ज्योति को अपने सुयोग्य शिष्य स्वामी दयानन्द सरस्वती में संक्रमित कर दिया और गुरु दक्षिणा के रूप में स्वामी दयानन्द के जीवन का यह लक्ष्य निर्धारित कर दिया कि इस आर्ष–ज्ञान–ज्योति को जन–जन तक पहुंचाना ही उनका मुख्य कर्तव्य था। स्मृतिशेष गुरुवर ब्रह्मदत्त जिज्ञासु स्वामी पूर्णानन्दजी सरस्वती ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त एवं आर्ष–पाठविधि के विशिष्ट अनुयायी थे। उस काल में संस्कृत अध्ययन–अध्यापन की जो परम्परा थी, वह आर्ष–पाठविधि के सर्वथा विपरीत थी। जिज्ञासु जी ऋषि दयानन्द के परम भक्त थे। इसी कारण तत्कालीन विपरीत परिस्थितियों के रहते हुए भी उन्होंने महर्षि द्वारा प्रदर्शित आर्ष–पाठविधि, जिसका उस समय कोई नामलेवा भी नहीं था, आर्यसमाज के गुरुकुलों में प्रचार नहीं ही किया, अपितु उसके उद्धार का संकल्प लिया और आजीवन इसी कार्य में लगे रहे। उन्होंने अपने अनन्य अध्यवसाय से यह सिद्ध करके दिखा दिया कि आर्षपाठ विधि ही एकमात्र ऐसा मार्ग है, जिसके द्वारा अल्पकाल में साङ्गोपाङ्ग वेद का अध्ययन किया जा सकता है। प्रायः संस्कृत शास्त्रों के अध्ययन की जो परम्परा चिरकाल से हमारे देश में प्रचलित है, उसमें अनेक दोषों में से एक दोष यह भी था कि किसी एक शास्त्र के अध्ययन के लिए न्यूनातिन्यून बारह वर्ष का काल अपेक्षित होता है। ऐसी स्थिति में कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में दो–तीन विषयों से अधिक का अध्ययन नहीं कर सकता है, साङ्गोपाङ्ग वेदाध्ययन की बात तो दूर रही। स्मृतिशेष जिज्ञासुजी जब वीतराग पूज्य स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज के साधु–आश्रम, अलीगढ़ में पहुंचे तो साधु आश्रम में जो संस्कृत पाठशाला चलती थी, उसमें लघुकौमुदी आदि के अनुसार व्याकरण का अध्ययन–अध्यापन होता था। साधु आश्रम में निवास करते हुए एक दिन जिज्ञासु जी ने महाराज से कहा कि उनके यहाँ उन ग्रन्थों का अध्ययन–अध्यापन होता है, जिनका ऋषि दयानन्द ने खण्डन किया है। अष्टाध्यायी के क्रम से व्याकरण का अध्ययन–अध्यापन क्यों नहीं कराया जाता स्वामीजी महाराज को उस समय तक कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला था, जो अष्टाध्यायी के क्रम से व्याकरण–शास्त्र पढ़ाने की योग्यता रखता हो। अतः उन्होंने अपने स्वभाव के अनुसार कहा कि जिज्ञासु जी ही इस कार्य को करने का बीड़ा उठाएं। साधु आश्रम में अष्टाध्यायी के क्रम से पढ़ाने के लिये गुरुकुल की स्थापना हेतु योग्य अध्यापकों की आवश्यकता थी। इसके लिये जिज्ञासु जी काशी गये। पण्डित शङ्करदेवजी और पण्डित बुद्धदेवजी को लेकर साधु आश्रम पहुंचे। पुराने विद्यार्थियों में से जो विद्यार्थी अष्टाध्यायी के क्रम से व्याकरण पढ़ने के इच्छुक थे, केवल वे ही गुरुकुल में रुके रहे। इस आश्रम का नाम व्याकरण की चल रही पद्धति के प्रथम उद्धारक श्री स्वामी विरजानन्द जी के नाम पर विरजानन्द आश्रम रखा गया। सन् 1921 विरजानन्द आश्रम की स्थापना के शताब्दी वर्ष के अवसर पर वैदिक साधन आश्रम की ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ। पत्रिका आर्षपाठ विशेषांक सुधी पाठकों की सेवा में समर्पित है।

डॉ० कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री

ओ३म्

वेदामृत

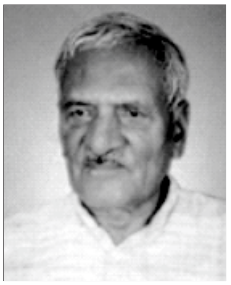

'मैं तेरी स्तुति करूंगा'

स्तविश्यामि त्वामहं, विश्वस्यामृत भोजन।
अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य, यजिश्ठं हव्यवाहन।।

ऋग्वेद 1.44.5

ऋषिः प्रस्कण्वः काण्वः। देवता अग्निः। छन्दः विराट् पथ्या बृहती।

(अमृत) हे अमर! हे सदामुक्त! **(विश्वस्य भोजन)** हे विश्व के भोजन एवं पालक! **(मियेध्य)** हे दुःखों के प्रक्षेप्ता! **(हव्यवाहन)** हे प्राप्तव्य द्रव्यों को प्राप्त करानेवाले! **(अग्ने)** हे अग्रणी तेजोमय परमात्मन्! **(त्रातारं)** त्राणकर्ता, **(अमृतं)** पीयूषतुल्य! **(यजिश्ठं)** सर्वाधिक यज्ञकर्त्ता **(त्वां)** तुझे **(अहं)** मैं **(स्तविश्यामि)** स्तुति का विषय बनाऊंगा।

हे मेरे अग्रनेता तेजःस्वरूप परमेश्वर! मैं तुम्हारी स्तुति करूंगा, तुम्हारे गुणों का कीर्तिन करूंगा, तुम्हारी आराधना करूंगा। तुम्हारी स्तुति मैं तुम्हारे भले के लिए नही, प्रत्युत अपने कल्याण के लिए करना चाहता हूं। कहते हैं कि भगवान् भक्त की स्तुति से रीझते हैं और उस पर सब–कुछ न्यौछावर कर देते हैं। आज मैं भी इसका परीक्षण करूंगा।

हे भगवन्! तुम 'अमृत' हो, अमर हो, सदामुक्त हो। अमर तो मेरा आत्मा भी है, पर मुझमें और तुममें बहुत अन्तर है। मेरा आत्मा अमर होता हुआ भी जन्म–मरण के बन्धन में पड़ता है, पर तुम सदा इस बन्धन से छूटे हुए हो। तुम विश्व के 'भोजन' हो। सन्तजनों ने कहा है कि वे भौतिक भोजन के बिना कुछ समय रह भी सकते हैं, किन्तु तुम्हारी भक्ति के भोजन बिना नहीं रह सकते। साथ ही तुम विश्व–पालक होने से भी विश्व के 'भोजन' कहलाते हो। तुम 'मियेध्य' हो, दुःखियों के दुःख को प्रक्षिप्त करनेवाले हो। बड़े–से–बड़े दुःख को उनके समीप से तुम ऐसे प्रक्षिप्त कर देते हो, जैसे वायु तिनके को उड़ा देता है। तुम 'हव्यवाहन' हो, समस्त प्राप्तव्य पदार्थ हमें प्राप्त करानेवाले हो। तुम 'त्राता' हो, विपत्तियों से त्राण करनेवाले हो। वेदमन्त्र द्वितीय बार पुनः तुम्हें 'अमृत' कह रहा है, क्योंकि तुम भक्त के लिए पीयूष–तुल्य हो, सुधा–रस हो। तुम 'यजिष्ठ' हो, सबसे बड़े यज्ञकर्ता हो, क्योंकि तुम अखिल ब्रह्माण्ड के संचालनरूप यज्ञ को कर रहे हो। हम मानव तो छोटे–छोटे यज्ञों का ही आयोजन करते हैं और उन्हें भी कठिनाई से ही निर्विघ्न पूर्ण कर पाते हैं। पर तुम सकल विश्व के उत्पादन और धारणरूप विशाल यज्ञ को अनायास निष्पन्न कर रहे हो।

हे जगदीश्वर! मैंने केवल तुम्हारी स्तुति की है, याचना कुछ नहीं की। यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो और वर मांगने को कहते ही हो, तो तुम यही वरदान दो कि मुझे भी अपने सदृश विश्वपालन, विश्वत्राता, दुःखहर्ता, यशःशरीर से अमर, यज्ञकर्ता और अव्यवाहन बना दो।

(पुस्तक वेद–मंजरी से साभार)

महर्षि प्रतिपादित आर्षपाठ हेतु संस्कृत पठन–पाठन की अनुभूत सरलतम विधि नामक पुस्तक की उपयोगिता

–डॉ0 कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री

हमारी भारतीय संस्कृति का मूलाधार उसका साहित्य है। भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण वाङ्मय देववाणी संस्कृत भाषा में है। संस्कृत भाषा ही इस पुण्य भूमि भारत में उत्पन्न हुए वाल्मीकि, व्यास, वैशम्पायन, गौतम, कणाद, पाणिनि आदि ऋषि मुनियों के विचारों की अभिव्यक्ति का आधार रही है। समस्त वेद वेदांग की पावन शिक्षा देववाणी संस्कृत में ही प्रस्फुटित हुई है। अतएव प्राचीन वेद–शास्त्रों के प्रति निष्ठा और धर्म में श्रद्धा उत्पन्न करने के लिए संस्कृत भाषा का अध्ययन अनिवार्य है और इससे ही समस्त भारत को एक सूत्र में आवद्ध करने में हम समर्थ हो सकेंगे। इसी पावन उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्राचीन काल से ही सभी लोग महर्षि पाणिनि प्रणीत अष्टाध्यायी पद्धति से संस्कृत का पठन–पाठन करते थे। किन्तु अनार्ष ग्रन्थों के प्रचलन के कारण यह पद्धति लुप्त सी हो गयी थी। व्याकरण के सूर्य, प्रज्ञा चक्षु दण्डी विरजानन्द सरस्वती जी ने इस बात का पुनः प्रचार किया कि आर्ष ज्ञान ही श्रेष्ठ ज्ञान है, आर्य सिद्धान्त ही सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त है और आर्ष शिक्षा ही मनुष्य के यथार्थ सुख और शान्ति का हेतु है। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के तृतीय सम्मुल्लास में संस्कृत पठन–पाठन के लिये आर्षपाठ विधि ही प्रतिपादित की है।

इसी पद्धति (अष्टाध्यायी) का उनके शिष्य महर्षि दयानन्द सरस्वती ने पुनः पठन–पाठन का क्रम प्रचलित किया। उन्होंने अपने ग्रन्थों में शिक्षा के प्रति लिखा कि आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना, बहुमूल्य मोतियों का

पाना। जो बुद्धिमान, पुरुषार्थी निष्कपटी, विद्या वृद्धि के चाहने वाले नित्य पढ़ें–पढ़ावे तो डेढ़ वर्ष में पाणिनि की अष्टाध्यायी और डेढ़ वर्ष में महाभाष्य पढ़ के तीन वर्ष में पूर्ण वैयाकरण होकर वैदिक और लौकिक शब्दों का व्याकरण से बोध कर पुनः अन्य शास्त्रों को शीघ्र सहज में पढ़–पढ़ा सकते है। (सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समु०)

महर्षि दयानन्द सरस्वती के विचारों से प्रेरित पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जी के इस पुस्तक के बारे में विचार इस प्रकार हैं–

"बहुत से सज्जनों को यह विचार बड़ी प्रबलता से उत्पन्न होता है कि संस्कृतज्ञान के लिये व्याकरण की आवश्यकता ही क्या है ? अङ्ग्रेजी ढंग से पढ़े हुए बहुत से डी० लिट् आदि स्वयं पढ़े न होने के कारण ऐसा कहते हैं कि व्याकरण की आवश्यकता ही नहीं। हम अपने पठनार्थियों के हृदय में यह बात अङ्कित कर देना चाहते हैं कि संस्कृत के ज्ञानार्थ व्याकरण पढ़ना परमावश्यक है, और उसके लिए पाणिनि की सूत्रशैली ही परम उत्कृष्ट एवं सर्वाधिक सुगम पद्धति है।

स्मृतिशेष पं.ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जी का ही नहीं अपितु उनके परम शिष्य स्मृतिशेष आचार्य धर्मानन्द शास्त्री (गुरुजी) का जीवन कर्तव्यों और आदर्शों को समर्पित रहा है। गुरुजी ने स्व० श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु की जन्म शताब्दी समारोह के अवसर पर वेदवाणी मासिक पत्रिका के

विशेषांक में लिखा है "एक दिन सायंकाल उन्होंने (प० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जी ने मुझे बुलाकर कहा कि पहले व्याकरण में अपने को योग्य बनाओ, तब परीक्षा देने की बात सोचो, पर साथ में यह पूछने लगे कि तुम्हारा विद्या पढ़ने का क्या उद्देश्य है? परीक्षा देने के पचड़े में क्यों पड़े हो? और कहने लगे कि परीक्षाएं तो ये लोग देते हैं, जो सरकारी नौकरी चाहते हैं, क्या तुम्हें कोई नौकरी करनी है? अतः अपने को विद्या में योग्य बनाओ और जीवन में अष्टाध्यायी के माध्यम से संस्कृत का प्रचार करो। उस समय गुरुजी ने एक महत्वपूर्ण बात मुझसे कही कि मेरी बनायी सरलतम विधि के आधार पर अष्टाध्यायी का प्रचार–प्रसार करो मैं ऐसा करूंगा, ऐसा दृढ निश्चयात्मक वचन मुझे दो। मैंने उस समय बिना सोचे समझे उन्हें वचन दे दिया कि मैं आजीवन संस्कृत व संस्कृति का प्रचार करूंगा। मैं 1966 से लेकर अबतक उन्हीं के आदेश का पालन करता आ रहा हूँ।"

आचार्य धर्मानन्द शास्त्री (गुरुजी) ने अपने गुरुवर के आदेशों को शिरोधार्य करते हुए– "जिज्ञासु सरलतम संस्कृत प्रचार समिति उ.प्र" नामक संस्था विधिवत् गठन सन् 1969 में इलाहाबाद (उ0प्र0) में किया। इस संस्था की मुख्य योजनायें निम्नवत् थीं–

समिति की योजनायें और उद्देश्य–

1. स्थान–स्थान पर सरलतम संस्कृत पठन–पाठन के शिविर का आयोजन।
2. संस्कृत भाषा, साहित्य एवं सरलतम संस्कृत के प्रचारार्थ सुयोग्य प्रचारकों का निर्माण, संगठन तथा प्रचार कार्य में उनका विनियोग करना।
3. संस्कृत के प्रचार में संलग्न अन्यान्य लघु संस्थाओं तथा व्यक्तियों को संगठित करना, पथ–प्रदर्शन करना तथा उनसे अपने कार्य में सहयोग लेना।
4. सुविशाल वैदिक साहित्य में जो ऐहलौकिक जीवनोपयोगी अपार उत्तमोत्तम सामग्री बिखरी पड़ी है उसका संकलन तथा सानुवाद प्रकाशन करना।
5. संस्कृत भाषा, साहित्य एवं संस्कृति से सम्बद्ध विषयों एवं समस्याओं की व्यापक चर्चा के लिए संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी इत्यादि पत्र–पत्रिकाओं का यथा सम्भव प्रकाशित करना।
6. उपर्युक्त समस्त कार्यक्रमों के साध्य सम्पादन एवं कार्यालय के लिए स्वतन्त्र भवन, ग्रन्थालय, उपकरणों के समुच्चय तथा स्वतंत्र मुद्रणालय की स्थापना करना।
7. एक पाणिनि संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना करना और उसके विविध शाखाओं की भी स्थापना करना।
8. संस्कृत भाषा एवं आर्य साहित्य (वेद प्रचार) के माध्यम से प्रत्येक भारतीय के हृदय में प्राचीन भारत के प्रति निष्ठा उत्पन्न करना, भारत में भाषिक एवं सांस्कृतिक एकता को सुदृढ़ करना और सभी जिज्ञासुओं के लिए भारतीय ज्ञान, विज्ञान एवं वैदिक संस्कृति और सभ्यता के मौलिक अध्ययन को सुलभ बनाना समिति के उद्देश्य हैं।

शिक्षास्तर और विशेषताएं

समिति द्वारा संचालित ४ माह के प्रशिक्षण शिविरों में प्रत्येक आयु के नर–नारी बिना किसी वर्ग, विशेष के भेद भाव को छोड़कर एक साथ शिक्षा ग्रहण करते रहे हैं।

शिविर में विद्यार्थियों को स्व. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु कृत संस्कृत पठन–पाठन की अनुभूत सरलतम विधि नामक पुस्तक पढ़ाई जाती रही है जिसकी सहायता से मूल अष्टाध्यायी के सूत्रों का अर्थ, अनुवृत्ति अधिकार लगाकर सरलता से बता देते हैं। यह अनुवर्तन पद्धति ही ऐसी है जिससे छात्रों

को बुद्धि के पूर्ण विकास का समुचित अवसर मिलता है। वेदभाषा संस्कृत के लिए शुभ दिन तब होगा जब विश्वविद्यालयों से लेकर संस्कृत पाठशालाओं तक इस वैज्ञानिक एवं सरलतम विधि से संस्कृत पठन–पाठन का क्रम आरम्भ किया जायेगा। इन चार मासों में हमारे शिविरों में संस्कृत व्याकरण का मौलिक ज्ञान करा दिया जाता था, जिनमें वर्णोच्चारण शिक्षा, सन्धि, समास, कारक, शब्दरूप एवं धातुरूप, अनुवाद कृदन्त एवं तद्धित प्रत्यय, अष्टाध्यायी के सूत्रों की व्याख्या अधिकार अनुवृत्ति के आधार पर सुगम पद्धति से ज्ञान कराया जाता है (अर्थ उदाहरण सिद्धि सहित) तथा परस्मैपद् एवं आत्मनेपद के दशों लकारों एवं दशों गणों की सिद्धि आदि का गम्भीर ज्ञान करा दिया जाता है। इन पाठों के अतिरिक्त प्रशिक्षार्थियों को सच्चरित्रता एवं भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों से सुपरिचित कराने का सराहनीय प्रयास किया जाता था । यह कार्य संस्कृत एवं संस्कृति के प्रचार एवं प्रसार का लक्ष्य करके बहुजन सुखाय बहुजन हिताय निःशुल्क रूप से किया जाता था ।

उपरोक्त योजना के अनुसार कार्य करते हुए एक वर्ष के अल्पकाल में ही इस समिति की शाखाएं आन्ध्र प्रदेश से उत्तर प्रदेश तक फैल गई। पं. धर्मानन्द शास्त्री ने स्वयं प्रयाग नगर में १९६९ में कन्या इण्टर कालेज, आर्य समाज चौक एवं इलाहाबाद विश्वविद्यालय में त्रैमासिक संस्कृत प्रशिक्षण शिविर प्रारम्भ किया, जिसमें नगर के अनेक प्रतिष्ठित नर–नारी, वकील, व्यापारी, अध्यापक व छात्र–छात्राओं ने भाग लिया। समिति का दीक्षान्त समारोह सत्र की समाप्ति पर आर्य कन्या इण्टर कालेज में समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ था जिसमें तत्कालीन महामहिम राज्यपाल उ.प्र. श्री बी. गोपाल रेड्डी ने ११२ प्रशिक्षार्थियों को समिति की प्रथमा परीक्षा का प्रमाण–पत्र वितरित किया था। शिविर की अभूतपूर्व सफलता के पश्चात् प्रयाग में विधियत एक जिज्ञासु सरलतम संस्कृत प्रचार समिति, उत्तर प्रदेश नामक संस्था की स्थापना कर दी गई। समिति द्वारा १९६९ से वर्ष २००१ तक प्रयाग के आर्य कन्या डिग्री कालेज, आर्य समाज कटरा, आर्य समाज रानी मंडी, किदवई गर्ल्स इण्टर कालेज, डी.ए.वी. इण्टर कालेज, लाजपत भवन, आर्य समाज कल्याणी देवी, सदन लाल सांवल दास खत्री महिला महाविद्यालय के भवन में बड़े उत्साहपूर्वक त्रैमासिक शिविरों का आयोजन होता रहा था, जिससे हजारों प्रशिक्षार्थियों ने शिक्षा प्राप्त किया है। प्रयाग के अतिरिक्त संस्कृत प्रचार के व्यापक दृष्टिकोण व बढ़ती हुई लोकप्रियता के विस्तार हेतु वर्ष १९७१ में कानपुर, १९७३ में लखनऊ, १९७६ में सीतापुर, १९७८ में दिल्ली एवं १९८६ में आगरा में एवं १९९८ में अमेरिका में, शिविर आयोजित किए गए, जिनका संचालन तपस्वी आचार्य धर्मानन्द जी ने बड़े परिश्रम, कर्मठता व निष्ठा से किया था ।

समिति के बढ़ते हुए कार्यों को दृष्टि में रखते हुए कानपुर एवं लखनऊ में शाखा समिति की स्थापना भी कर दी गई थी, जिनके तत्वावधान में शिविर निरन्तर चलते रहे थे ।

संस्कृत के शिविर प्रयाग में–

हमारी समिति प्रयाग में १९६९ में स्थापना काल से अद्यावधि सैकड़ों शिविर सम्पन्न कर चुकी थी। प्रारम्भ में हमारी समिति के प्रधान के रूप में श्री डॉ. सत्यप्रकाश जी ने संस्कृत प्रचार को व्यापक रूप देने का स्तुत्य कार्य किया था। आपके सन्यास लेने के पश्चात इस स्थान की कमी को पूरा किया सुप्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री श्री डॉ. आर्येन्द्र शर्मा, प्राचार्य गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ प्रयाग ने अनेक वर्षों तक आपके प्रधानत्व में समिति के कार्यों की विशेष अभिवृद्धि हुई। आपके जर्मनी चले जाने के पश्चात् यह स्थान पुनः रिक्त हो गया था। इसकी

पूर्ति अष्टाध्यायी के परम भक्त श्री विश्वम्भर नाथ अग्रवाल ने किया। श्री गुरु जी से अष्टाध्यायी से संस्कृत अध्ययन करने के पश्चात् आपने कई वर्षों से एक शिविर में विधिवत् अध्यापन एवं अपनी योग्यता में भी अभिवृद्धि करते हुए अष्टाध्यायी पद्धति से आचार्य परीक्षा भी उत्तीर्ण की थी। प्रयागस्थ शिविरों के दीक्षान्त समारोहों में माननीय श्री डॉ. गोपाल रेडी (राज्यपाल उ.प्र.) श्री वीरेन्द्र स्वरूप जी (अध्यक्ष विधान परिषद उ.प्र.), डॉ. रायगोविन्द चन्द्रजी कुलपति वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय माननीय न्यायमूर्ति पं. शिवनाथ काटजू (प्रयाग विश्वविद्यालय के कुलपति) डॉ. बाबूराम सक्सेना, डा. रामसहाय डा. पी.डी. हजेला एवं श्री पं. युधिष्ठिर मीमांसक (सोनीपत). श्री गोपाल शास्त्री दर्शन केशरी (वाराणसी), डा. नीलकंठ पुरुषोत्तम जोशी (लखनऊ), श्री बालसुब्रह्मण्यम् शास्त्री आदि विद्वानों ने भाग लेकर समिति को उत्साहित किया था।

कानपुर में शिविरों का आरम्भ

केन्द्रीय समिति के तत्कालीन प्रधान डा. सत्यप्रकाश जी की प्रेरणा से १९७१ में कानपुर में शिविरों का शुभारम्भ आर्यसमाज मेस्टन रोड, आर्य समाज सीसामऊ तथा बाल निकुन्ज स्वरूप नगर में किया गया था। शिक्षण का दायित्व तपस्वी श्री धर्मानन्द जी शास्त्री ने वहन किया। शिविरों की पूरी सफलता में सर्व श्री पं. विद्याधर जी, पं. लक्ष्मण कुमार शास्त्री एवं प्रो. श्री प्रकाश जी. श्री देवीदास आर्य जी का प्रशंसनीय योगदान रहा था। शिविर की समाप्ति पर माननीय डा. गोपाल रेड्डी (राज्यपाल उ.प्र.) ने ८५ प्रशिक्षार्थियों को दीक्षान्त के अवसर पर प्रमाण पत्र वितरित किए गये थे। अब यहां एक उपसमिति कार्यरत है जो कि प्रति वर्ष शिविरों का आयोजन विधिवत करती रही है।

आचार्य धर्मानन्द शास्त्री के देहावसान 14, सितम्बर 2015 तक 46 वर्ष में कानपुर आदि नगरों में 2०० से अधिक शिविर आयोजित किये जा चुके हैं। इन शिविरों का संचालन गुरूजी द्वारा किया जाता था। उक्त स्थानों के अतिरिक्त, कानपुर विद्यामन्दिर डिग्री कालेज स्वरूप नगर, ज्यालादेवी विद्यालय, जे. के. विद्यालय जे. के. पुरी, आर्य कन्या इण्टर कालेज गोविन्द नगर, आर्य समाज हरजेन्दर नगर, सनातन धर्म विद्यालय कौशलपुरी सहित अनेक स्थानों में शिविर चलाये गये थे। वर्ष 1999 एवं 2000 में दो शिविर आर्य समाज सीसामऊ एवं आर्य समाज गोविन्द नगर में चलाये गये जिनका दीक्षांत समारोह 18 नवम्बर 2000 को सम्पन्न हो हुआ था। कानपुर में आयोजित 10वें दीक्षान्त समारोह के अध्यक्ष श्री राम शरण श्रीवास्तव भूतपूर्व जिलाधीश थे। मुख्य अतिथि लोक सेवा आयोग उ.प्र. के अध्यक्ष श्री कृष्णबिहारी पाण्डेय के कर कमलों द्वारा प्रशिक्षणार्थियों को प्रमाण पत्र वितरण किया गया था। वर्ष 71 से गुरुजी के देहावसान की तिथि तक चलने वाले इन शिविरों में नगर के अनेक सम्मानित लोगों का सहयोग समिति को प्राप्त हुआ था।

सीतापुर में शिविर

१९७६ ई. में ओम प्रकाश अग्रवाल, प्रधान आर्य समाज, सीतापुर के आग्रह पर सीतापुर में शिविर आरम्भ किया गया था, शिविर बड़ी सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ था। दीक्षान्त समारोह विद्वान श्री पं0 युधिष्ठिर मीमांसक जी के कर कमलों से ८५ प्रशिक्षित नर–नारियों को प्रमाणपत्र दिया गया।

हैदराबाद में पाणिनि महाविद्यालय

हैदराबाद की सहयोगी समिति स्थाई रूप से दिलसुख नगर हैदराबाद, आन्ध्र प्रदेश में एक पाणिनि महाविद्यालय स्थापित कर नियोजित ढंग से कार्य कर रही थी। यहाँ के पाणिनीय महाविद्यालय की विशेषता यह थी कि इसमें

बी. एड कक्षाओं में भी इसी पद्धति से संस्कृत की शिक्षा दी जाती थी। साथ ही श्री नरसिम्ह जी शास्त्री के सहयोग से हैदराबाद नगर में अलग से भी श्रेणियां नियमित चलाई जाती थीं।

दिल्ली में शिविर

अनेक वर्षों से दिल्ली में शिविर आरम्भ करने की मांग हो रही थी. अतः १९७८ ई. में पं. धर्मानन्द शास्त्री के अनुज श्री दण्डी नरसिन्ह जी की प्रेरणा से शिविर प्रारम्भ हुआ था। 1990 एवं 1995 में नगर एवं अशोक विहार में पुनः शिविर चले।

लखनऊ में शिविर

सन् १९७३ में सितम्बर मास में उ.प्र. की राजधानी लखनऊ में पहली बार दो शिविर अखिल भारतीय संस्कृत परिषद् हजरतगंज एवं आर्य समाज गणेश गंज में प्रारम्भ किए गए जिनका उद्घाटन तत्कालीन मुख्यमंत्री पं. कमलापति त्रिपाठी एवं श्री जनार्दन दत्त शुक्ल आईएएस ने किया। लगभग ६५ विद्यार्थी, जिनमें १२ से ८४ वर्ष तक की आयु के छात्र एवं छात्राएं थी. सफलता प्राप्त की। दीक्षान्त समारोह के अवसर पर प्रमाण पत्र वितरण तत्कालीन विधान सभाध्यक्ष श्री आत्माराम गोविन्द खेर एवं दीक्षान्त वक्तृता संस्कृत व्याकरण एवं भाषाएं युधिष्ठिर जी मीमांसक ने किया था।

सन् १९७४ मे पुनः दो शिविर क्रमशः आर्य समाज गणेशगंज तथा समाज डालीगंज) में चलाये गए थे। 15 सितम्बर 1975 ई. को लखनऊ में तीसरी बार दो शिविर आर्य समाज गणेशगंज और अखिल भारतीय संस्कृत परिषद् हजरतगंज में संचालित किये गये।

गुरुजी पं. धर्मानन्द जी शास्त्री की विशेष कृपा से तीन शिविर प्रथमावृत्ति के आर्य समाज लाजपत नगर, अखिल भारतीय संस्कृत परिषद हजरतगंज एवं आर्य समाज सदर में 31 मई 1982 से प्रारम्भ हुए थे। द्वितीया वृत्ति का भी एक शिविर नगर आर्य समाज रकाबगंज में प्रारम्भ किया गया था।

स्मृतिशेष पं. धर्मानन्द जी शास्त्री (गुरुजी) के कृतित्व और व्यक्तित्व के सम्बन्ध में स्वानुभव से वृतान्त अधोलिखित है–

वर्ष २००४ मे मेरी तैनाती कानपुर में ज्वाइन्ट कमिश्नर, वाणिज्य कर के रूप में हुई। यहां पर भी मैं आर्यसमाज सीसामऊ व लाजपत नगर के दैनिक व साप्ताहिक सत्संगों में परिवार सहित जाने लगा। वर्ष २००५ में मुझे पता चला कि स्मृतिशेष पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु के परम प्रिय शिष्य आचार्य धर्मानन्द जी अपने पूज्य गुरु के आदेशानुसार महर्षि दयानन्द की भाँति गुरु को दिये हुए वचनों को निभाते हुए अपने गुरु द्वारा अनुभूत सरलतम विधि से कई वर्षों से अष्टाध्यायी व्याकरण पढ़ा रहे हैं तथा वह झांसी में श्रेणी पढ़ाने के बाद शीघ्र ही कानपुर पधारेंगे। मैं उनके कानपुर आगमन की बेसब्री से प्रतीक्षा करने लगा। पूज्य गुरुजी सितम्बर २००५ में कानपुर पधारे तथा अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में गुरुजी ने प्रातः तथा सायं क्रमशः आर्यसमाज सीसामऊ व आर्यसमाज गोविन्द नगर, कानपुर में संस्कृत पठन–पाठन की अनुभूत सरलतम विधि भाग–एक पढ़ाना प्रारम्भ किया। यह अध्यापन कार्य फरवरी २००६ के मध्य तक चला। इस अवधि मे गुरुजी द्वारा अपनाई गई अध्यापन विधि तथा उनके अनुशासन की चर्चा करना आवश्यक है। इसके साथ ही पूज्य गुरुजी के व्यक्तित्व पर कुछ शब्द व्यक्त करना मैं एक शिष्य के नाते अपना कर्तव्य समझता हूँ।

१. गुरुजी की शिक्षण प्रणाली तथा अनुशासन प्रातः काल लगने वाली श्रेणी ६.३० पर प्रारम्भ होकर ८.०० बजे तक चलती थी। सायं की श्रेणी सायं ५.३० से ७.०० बजे तक चलती थीं।

२. प्रातःकाल की श्रेणी में २५ पठनार्थी थे जिनमे

सबसे कम आयु की १४–१५ वर्ष की छात्रायें तथा सबसे अधिक लगभग ६५ वर्ष आयु के एक व्यक्ति थे। सायं काल की श्रेणी में भी लगभग २५–३० व्यक्ति पढ़ते।

3. प्रातः काल की श्रेणी ६.३० प्रारम्भ होती थी। यह श्रेणी माह नवम्बर, दिसम्बर व जनवरी की कड़ाके की सर्दी में भी नियमित चलती रहीं।

४. गुरुजी की उस समय आयु लगभग ६७ वर्ष हो चुकी थी। शारीरिक रूप से वह कमजोर थे। (आन्ध्र प्रदेश) निवासी होने के कारण ठण्ड के मौसम में उन्हें कठिनाई होती थी। सीसामऊ का हॉल एक ओर कोई दीवार न होने के कारण खुला हुआ था। परन्तु गुरुजी ने कड़ाके की सर्दी में भी कभी श्रेणी स्थगित नहीं की।

५. समय की सख्त पाबन्दी थी। एक मिनट भी लेट होने पर कड़ी डांट पड़ती थी। बड़े या छोटे का इसमें कोई भेद नहीं था।

६. गुरुजी एक कुर्सी या तख्त पर बैठ कर पढ़ाते थे तथा सभी पठनार्थी जमीन पर गुरुकुल की भाँति पालथी मार कर बैठते थे।

७. गुरुजी का अनुशासन कठोर रहता था तथा किसी विशेष को कोई छूट अनुशासन में देय न थी।

८. गुरुजी ने लगभग प्रथम डेढ़ माह तक सभी पठनार्थियों को नैतिक व आचार सम्बन्धी शिक्षा दी। जीवन में काम आने वाली कई अच्छी बातें बतायीं। कई सुभाषित व श्लोक लिखवाये जिनमें दो श्लोक जो गुरुजी ने श्रेणी के प्रारम्भ में ही लिखवाये वह निम्न प्रकार हैं:–

(1) श्यः पठति लिखति पश्यति परिपृच्छति पण्डितानमुपाश्रयति तस्य दिवाकर किरण नलिनीदलमिव विकास्यते बुद्धिः।

(2) स तु दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कारा सेवितो दृढभूमिः।

जीवनभर उक्त सूत्रों का पालन करने से हमें लाभ मिला है।

९. संस्कृत पठन–पाठन की अनुभूत विधि प्रथम–भाग का ५५ दिन का पाठ्यक्रम है। गुरुजी ने हमें शब्दों के भेद सूत्र–आख्यात के भेद, अनुवृत्ति और अधिकार स्थान प्रयत्न अर्थ के प्रकार सूत्र–शैली का प्रारम्भ इत संज्ञा का भलीभांति ज्ञान कराया।

१०. सूत्रों के अर्थ के सम्बन्ध में विशेष रूप से शिक्षा दी गई। अष्टाध्यायी में सम्बन्धित सूत्रों पर लाल स्याही की पेन या पेन्सिल से अनुवृत्ति व अधिकार सूत्र कहां तक जाता है अंकित कराया गया तथा अष्टाध्यायी के प्रत्येक पद पर विभक्ति अंकित कराई गई।

११. सर्वप्रथम दस लकारों को सूत्रों के आधार पर ही विभक्तियों के आधार पर इन्हें विभाजित संख्या ५, ६, ७, १ के क्रम में तथा यदि एक ही विभक्ति के दो पद हो तो उन्हें विशेषण विशेष्य के क्रम में रखकर सूत्रार्थ सिखाया गया।

१२. गुरुजी ने सूत्र शैली का महत्व बताते हुए वाच पुरुष, पठति, दीव्यति, तनोति, रुणद्धि ओ३म् आदि विभिन्न नाम तथा आख्यात सम्बन्धी पदों की सिद्धियों का ज्ञान दिया। गुरुजी ने हमें वेदमन्त्रों का अर्थ करना भी बताया तथा निबन्ध लेखन शैली से भी हमारा परिचय कराया।

गुरुजी का व्यक्तित्व

अपरिग्रह गुरुजी ने भले ही वानप्रस्थ या सन्यास ग्रहण नहीं किया है परन्तु उनका जीवन अत्यन्त सादगी भरा है उनकी आवश्यकताएं भी सीमित रहती है। केवल दो या तीन जोड़ी कुर्ते व धोती से अपना काम चलाते हैं। सर्दियों के मौसम में जब

मैं उनके लिए अच्छी क्वालिटी के इनर खरीद कर लाया तो गुरुजी ने कहा कि मेरे पास एक रंगीन इनर है। यह पर्याप्त है तथा मेरे द्वारा लाये गये इनर लौटा दिये।

एषणाओं से मुक्त स्वभाव– गुरुजी आजीवन अविवाहित रहे हैं। इसलिए पुत्रैषणा का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। लोकैषणा व वित्तैषणा से भी वे कोसों दूर थे। वे अपने शिष्यों से कभी धन की आशा नहीं करते थे। श्रेणी के अन्त में गुरु दक्षिणा भी बहुत अल्प धनराशि ही स्वीकार करते थे। अपनी प्रसिद्धि की भी उन्हें कोई चिन्ता नहीं रहती थी। वे सच्चे अर्थों में एक निष्काम योगी की तरह अपने कर्तव्य मार्ग पर चलते रहते थे। हृदय की विशालता तथा स्नेह–जहाँ गुरुजी अनुशासन के मामले में कठोर है वहीं हृदय से बहुत मृदुल थे। सभी छात्रों व बुजुर्ग व्यक्तियों से वे अत्यन्त स्नेह रखते थे। किसी विद्यार्थी के व्यक्तिगत कष्ट में वे अत्यन्त द्रवित हो जाते थे और उस व्यक्ति की स्वयं सहायता करते हुए अपने विद्यार्थियों को भी उसकी सहायता करने को प्रेरित करते थे।

कर्तव्य पथ पर दृढ़ता से चलना– गुरुजी की पोलियों से ग्रस्त होने व वृद्धावस्था के कारण शारीरिक विकलता भी रहतीथी, परन्तु उन्होंने कभी इसे अपनी कमजोरी नहीं माना तथा विकट परिस्थितियों में भी अपने कर्तव्य पथ पर हम पठनार्थियों को दिसम्बर जनवरी की कड़ाके की सर्दी में भी निरन्तर पढ़ाते रहे थे । गुरुजी ने उक्त लेख आज से लगभग उनसठ वर्ष पूर्व अक्टूबर 1962 में लिखा था। गुरुजी जीवनपर्यन्त अपने गुरुजी को दिये वचन का पालन करते हुए सरलतम विधि से संस्कृत शिक्षा देने का कार्य करते रहे। आपने लखनऊ, कानपुर, झांसी, इलाहाबाद, बरेली आदि शहरों में लगभग 46 वर्षों में आपने कई श्रेणियां चलाकर उक्त कार्य सम्पादित करते. मेरे जैसे अनेक पठनार्थियों के जीवन को प्रकाशित किया है। उनके अनेक पठनार्थियों ने गुरुजी से पढ़ने के बाद आगे भी अपना अध्ययन जारी रखते हुए उच्च योग्यतायें प्राप्त की हैं। मेरे लिये तो गुरुजी का मिलना व उनके द्वारा पढ़ाये जाना एक वरदान सिद्ध हुआ है। इससे मेरे जीवन में जो आचार्य की बाल्यकाल से ही कमी चली आ रही थी, वह भी पूर्ण हो गई और शतपथ ब्राह्मण व छान्दोग्य उपनिषद की समेवतरूप उक्ति अब मेरे जीवन में साक्षात् घट गई है, जिसके फलस्वरूप मैंने अपनी संस्कृत की योग्यता के आधार पर शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की व गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से वेद विषय से विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान प्राप्त करते हुए एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की और उसके बाद इसी विश्वविद्यालय से व्हिटनीकृत अथर्ववेद के आँग्ल भाषा में किये गये भाष्य का अनुवाद और अन्य भाष्यकारों से तुलनात्मक अध्ययन विषय पर पीएचडी की उपाधि प्राप्त की। गुरुजी ने मुझे इस योग्य बनाया कि मैं संस्कृत व संस्कृति को समझ सकूं। केवल मैं ही नहीं अपितु गुरुजी ने मुझ जैसे अनेक प्रौढ़, युवा और बालक/ बालिकाओं को संस्कृत और संस्कृति की शिक्षा देकर वैदिक संस्कारों से पल्लवित किया। उनके द्वारा पढ़ाये गये कई विद्यार्थी न केवल विभिन्न विश्वविद्यालये में प्रोफेसर व उच्च पदों पर आसीन हैं, अपितु लेखन के क्षेत्र में भी कार्यरत हैं। इनमें– 1. डा0 रूपचन्द्र दीपक (लेखनकार्य– (1) क्रान्ति और शान्ति के 8 दिव्य सूत्र, (2) पर्व–विज्ञान, (3) मन की साधना, (4) वेद प्रकाश, (5) Five Great Duties- 2–अनुवाद कार्य–(1) Philosophy of Dayanand का हिन्दी में अनुवाद–ऋषि दयानन्द का तत्त्व दर्शन, (2) स्वामी सत्य प्रकाश कृत Crytical Study of Philosophy of Dayanand का हिन्दी में अनुवाद–स्वामी दयानन्द का वैदिक दर्शन) सर्वोपरि हैं। यहाँ श्री सतीष आर्य का भी उल्लेख किया जा रहा है, आपने सरलतमविधि से शिक्षा कक्षा में ग्रहण नहीं की है और स्वतंत्र रूप

से अध्ययन करते हुए योग्यता अर्जित की है। उनका लेखन कार्य है–१. कर्म एवं कर्मफल मीमांसा, २. पातंजल योगदर्शन (व्यासभाष्य, भोजवृत्ति एवं वैदिक योग मीमांसा सहित), ३. परमात्म–साक्षात्कार कैसा। Books in English&1- An introduction to commentary on Vedas (English translation of Rigved aadi bhaasha bhoomika of Swami Dayanand Saraswati) 2. Patanjali Yogdarshan (with Vyavasay Gloss) and Vedic Commentary) 3. Yajurveda (English translation of swami Dayanand Saraswati) since completed under second level of proof reading. उपरोक्त विद्वानों के अलावा अन्य भी अनेक लेखक व साहित्यकार उनके द्वारा पढ़ाये गये विद्यार्थियों में हुए हैं। इसके लिए हम पूज्य गुरुजी के चरणों में शत्–शत् नमन करते हुए अपना आभार प्रकट करते हुए उन्हें श्रद्धाँजलि अर्पित करते हैं।

स्मृतिशेष आचार्य धर्मानन्द शास्त्री (गुरुजी) अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक अष्टाध्यायी के दीपक से विद्यार्थियों को प्रकाशित करते रहे। दिनाँक 14 सितम्बर 2015 को वे अपनी इस जीवन की यात्रा पूर्ण कर अनन्त यात्रा के लिये प्रस्थान कर गये। उनके देहावसान के बाद स्मृतिशेष पं.ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जी का ही नहीं अपितु उनके परम शिष्य स्मृतिशेष आचार्य धर्मानन्द शास्त्री (गुरुजी) का आर्ष पद्धति से अष्टाध्यायी के पाठ हेतु संस्कृत पठन–पाठन की अनुभूत सरलतम विधि से पढ़ाने का कार्य अब बन्द पड़ा है। ऐसे में हम समस्त शिष्यों और आर्ष पद्धति से श्रद्धा रखने वालों का यह दायित्व है कि इस पुनीत दीपक को बुझने न दें और ज्ञान के इस दीपक को प्रज्ज्वलित रखें। आजके तकनीकी और इनेटरनैट के दौर में जबकि वेबिनार और जूम आदि ऐप्लिकेशन्स की सहायता से कोई भी गुरु कहीं सेभी अनेक स्थानें पर स्थत शिष्यों को पढ़ा सकता है, हम इन तकनीकी ऐप्लिकेशन्स की सहायता से पढ़ सकते हैं। इस विषय में मैं अपनी ओर से पूर्ण सहयोग देने को तत्पर रहूँगा।

कैसे हम नूतन वर्ष मनाएं ?

विजय कनौजिया, अम्बेड़कर नगर, उ0प्र0

नूतन वर्ष की आहट भी
सहमी–सहमी सी लगती है
हर चेहरे मुरझाए से हैं
खुशियां भी सहमी लगती हैं..।।

बीते वर्ष का जख्म अभी
हम सब कब तक भर पाएंगे
रोजी–रोटी है छिनी हुई
बोलो कैसे मुस्काएँगे ।।

उम्मीदों का दामन भी तो
हैं सिमट चुके हालातों से
अपने अपनों से दूर हुए
किसके संग खुशी मनाएंगे..।।

बच्चों का तो बचपना छिना
हाथों से सबके हाथ छुटे
माँ की लोरी में दर्द छुपा
बच्चे कैसे सो पाएंगे..।।

है नए वर्ष में दुआ यही
खुशियां सबको फिर मिल जाएं
हर चेहरे पर हों मुस्कानें
पहले जैसा सब हो जाए..।।
पहले जैसा सब हो जाए..।।

आर्यसमाज के महाधन स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती की जयन्ती पर

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती का आर्यसमाज के इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान

—मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून

स्वामी दर्शनानन्द जी का आर्यसमाज के गौरवपूर्ण इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। आपका जन्म माघ मास कृष्ण पक्ष की दशमी के दिन विक्रमी संवत् 1918 को लुधियाना जिले के जगरांवा कस्बे में पिता पं0 रामप्रताप शर्मा जी के यहां 160 वर्ष पूर्व हुआ था। इस वर्ष आपकी जयन्ती 27 जनवरी को है। स्वामी दर्शनानन्द जी की माता का नाम हीरा देवी था। जन्म के समय स्वामी जी का नाम नेतराम रखा गया। आपके पितामह व प्रपितामह द्वारा बाद में आपका नाम बदल कर कृपाराम रख दिया गया। आपकी एक बड़ी बहिन कृष्णा जी थी तथा तीन अनुज पं0 कर्त्तारराम शर्मा, पं0 रामजी दास शर्मा तथा पं0 मुनिश्वर शर्मा थे। स्वामी जी की मिडल तक की शिक्षा फिरोजपुर में अपने मामा जी के यहां पर हुई। आपका विवाह पिता पं0 रामप्रताप जी ने कुल परम्परा के अनुसार 11 वर्ष की आयु में ही अमृतसर के एक कस्बे वीरवाल के निवासी पं0 सुन्दरदास जी की सुपुत्री पार्वती देवी के साथ सम्वत् 1929 में सम्पन्न करा दिया था। बचपन में स्वामी जी को पठन—पाठन सहित खेल—कूद, व्यायाम तथा पतंग उड़ाने का शौक था। स्वामी जी का एक पुत्र भी हुआ जिसका नाम नृसिंह रखा गया था।

स्वामी जी धर्म के विषय में चिन्तन मनन करते रहते थे। इन्हीं दिनों वह वेदान्ती बन गये। वेदान्त से प्रभावित पं0 कृपाराम जी विरक्त हो गये और

गृहस्थ का त्याग कर एक वेदान्ती का वैराग्यपूर्ण जीवन बिताने लगे। पं0 कृपाराम जी ने हिमाचल प्रदेश की कुल्लु घाटी में प्रथमवार संन्यास लिया था। उन्होंने 18 जून सन् 1878 को अमृतसर में सरदार भगवान सिंह जी के गृह पर पौराणिक विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ के अवसर पर ऋषि दयानन्द के साक्षात दर्शन किये थे। इस शास्त्रार्थ में पौराणिकों के लाये गये बालक व युवकों ने स्वामी जी पर पत्थर व ईंटों का प्रहार किया था। एक ईंट का टुकड़ा पं0 कृपाराम जी के पैर में भी लगा था जिसके घाव का निशान जीवन भर बना

रहा। पं0 कृपाराम जी यदा–कदा अपने मित्रों को यह निशान दिखाया करते थे। पं0 कृपाराम जी ने इन्हीं दिनों पंजाब के कुछ स्थानो ंपर ऋषि दयानन्द के लगभग 37 व्याख्यान सुने। इसके प्रभाव से आप वेदान्त मत की विचारधारा का त्याग कर ऋषि दयानन्द के वेदानुयायी भक्त बने। पं0 कृपाराम जी आरम्भ में स्वामी दयानन्द जी से शास्त्रार्थ करने के इरादे से उनके पास गये थे परन्तु वहां स्वामी दयानन्द जी का व्याख्यान सुन कर उनको शास्त्रार्थ की आवश्यकता नहीं पड़ी थी और वह वैदिक धर्म के अनुयायी बन गये। पं0 कृपाराम जी की जीवनी पढ़कर यह भी विदित होता है कि उनके पं0 लेखराम आर्य–मुसाफिर से गहरे मैत्रीपूर्ण व आत्मीय सम्बन्ध थे। पं0 कृपाराम जी ने अपने परिवार के साथ जगरावां में रहते हुए ही घर पर एक संस्कृत की पाठशाला खोली थी। उनकी प्रेरणा से पिता पं0 रामप्रताप जी ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों को पढ़ कर वैदिक धर्मी बन गये थे। आपके चाचा जी सहित कुछ परिवारजन आर्यसमाजी बने थे।

दिनांक 30 अक्टूबर सन् 1883 को ऋषि दयानन्द का अजमेर में निधन हुआ था। पं0 कृपाराम जी ने महाप्रयाण की इस घटना के पश्चात कुछ लघु ग्रन्थों का प्रकाशन किया। उन्होंने ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का वितरण भी किया। आपने स्थान–स्थान पर जाकर मौखिक प्रचार किया। पं0 कृपाराम जी ने अपने ग्राम जगरांवा में वेद प्रचार के लिये अपने व्यय से एक प्रचारक रखा था। काशी में रहते हुए पं0 कृपाराम जी के पितामह की मृत्यु हुई। आपने उनकी अन्त्येष्टि वैदिक रीति से कर एक इतिहास रचा। उन दिनों वैदिक रीति से अन्त्येष्टि करना सामाजिक बहिष्कार को आमंत्रण देना होता था। पं0 कृपाराम जी ने इसी अवसर पर 'तिमिरनाशक' साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन भी आरम्भ किया था। काशी में रहते हुए आपका भाद्रपद के शुक्लपक्ष की चतुर्थी, विक्रमी संवत् 1946 को देवता विषय पर काशी के लगभग एक सौ पण्डितों से शास्त्रार्थ हुआ। पण्डितों का नेतृत्व पं0 शिवकुमार शास्त्री जी ने किया था। इसमें काशी के पण्डितों की पराजय हुई थी। पं0 जी का तिमिरनाशक प्रैस काशी विश्वनाथ मन्दिर के समीप था। वहां आर्यसमाज और एक संस्कृत पाठशाला का संचालन भी पं0 कृपाराम जी द्वारा किया जाता था। पाठशाला में तीन अध्यापक रखे गये थे। आर्यसमाज में पं0 शिवशंकर शर्मा का नाम अमर है। आप पं0 कृपाराम जी की ही देन थे। पं0 शिवशंकर शर्मा जी पं0 कृपाराम जी के काशी के पंडितों के साथ शास्त्रार्थ में तर्क व युक्तियों से प्रभावित होकर आर्यसमाज के अनुयायी व ऋषिभक्त बने थे।

आचार्य नरदेव शास्त्री आर्यसमाज बच्छोवाली के सन् 1894 के उत्सव में पं0 कृपाराम जी के उपदेशों से प्रभावित होकर आर्यसमाज के अनुयायी बने थे। एक प्रतिभाशाली युवक को आर्यसमाज का सहयोगी बनाना पं0 कृपाराम जी के प्रभावशाली व्यक्तित्व व कृतित्व का ही परिणाम था। पं0 नरदेव शास्त्री के आचार्यात्व में गुरुकुल महाविद्यालय ने अनेक उपलब्धियां प्राप्त की हैं। पं0 कृपाराम जी पंजाब के आर्यसमाजों में अनेक अवसरों पर पं0 लेखराम जी के साथ उपस्थित हुए थे। दोनों विद्वानों में परस्पर गहरी आत्मीयता थी। पं0 कृपाराम जी ने अनेक पौराणिक विद्वानों से अनेक शास्त्रार्थ किये जिसमें सामान्य जन सम्मिलित होते थे। इसमें आर्यसमाज के पक्ष की विजय से प्रभावित होकर अनेक लोग आर्यसमाज की विचारधारा को ग्रहण कर आर्यसमाजी बनते थे।

मालेरकोटला पंजाब में लुधियाना के निकट है। यह मुस्लिम रियासत थी। यहां सन् 1895 में आर्यसमाज के उत्सव में स्वामी श्रद्धानन्द, पं0 लेखराम जी तथा स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती जी पहुंचे थे। इस उत्सव में इन तीन विभूतियों के

वहां के लोगों को एक साथ दर्शन होने से सुखद आश्चर्य हुआ था। इन विद्वानों के वहां व्याख्यान भी हुए। पं0 कृपाराम जी आर्यसमाज लुधियाना के प्रधान भी रहे। इस समाज में भी स्वामी श्रद्धानन्द और स्वामी दर्शनानन्द जी के एक ही दिन प्रवचन हुए थे। हम अनुमान लगा सकते हैं कि आर्यसमाज के अनुयायियों के लिए वह दृश्य स्वर्ग के समान सुखद रहा होगा। स्वामी दर्शनानन्द जी के प्रचार की सर्वत्र धूम थी। वह पंजाब के अनेक आर्यसमाजों में उत्सवों पर वेद प्रचार के लिये जाते थे। यह भी बता दें कि पंडित कृपाराम जी तेज गति से व्याख्यान देते थे। उनके व्याख्यान में संस्कृत शब्दों की प्रचुरता होती थी। पंडित जी ने सन् 1898 में धामपुर में आर्यसमाज की स्थापना भी की थी। पं0 जी ने एक ट्रैक्ट 'हम निर्बल क्यों?' सन् 1900 में लिखा था। आपने आगरा में 'धर्मसभा से प्रश्न' शीर्षक से एक ट्रैक्ट भी लिखा था जिसमें पौराणिकों से 64 प्रश्न किये गये थे। आपके बारे में यह प्रसिद्ध है कि आप प्रतिदिन एक ट्रैक्ट लिखा करते थे। आपके ट्रैक्टों का एक संग्रह स्वामी जगरीश्वरानन्द सरस्वती, दिल्ली ने कुछ वर्ष पहले प्रकाशित किया था। यह ग्रन्थ वर्तमान समय में भी इसके प्रकाशक एवं आर्य पुस्तक विक्रेताओं से उपलब्ध है। स्वामी जी आर्यसमाज में आने से पहले वेदान्ती थे। तब आपने संन्यास लेकर साधु नित्यानन्द नाम धारण किया था। आर्यसमाजी बनने पर यह साधुत्व वा संन्यास अप्रभावी हो गया था। आपने सन् 1901 में पुनः संन्यास लेकर स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती नाम धारण किया था। स्वामी जी हिन्दी व उर्दू के कवि भी थे। आप हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, अरबी व फारसी भाषाओं के विद्वान थे। हिन्दी व उर्दू में आपने अनेक कवितायें व गीत लिखे हैं। स्वामी जी पर दो बार न्यायालय में अभियोग भी चले।

स्वामी दर्शनानन्द जी ने अपने जीवन में अनेक गुरुकुलों की स्थापना की। सन् 1899 में स्वामी जी ने गुरुकुल सिकन्दराबाद, जनपद बुलन्दशहर की स्थापना की थी। स्वामी जी ने एक गुरुकुल बदायूं के सूर्यकुण्ड क्षेत्र में तपोभूमि गुरुकुल के नाम से सन् 1903 में स्थापित किया था। इस गुरुकुल का अपना बड़ा भवन आरम्भ के दो तीन वर्षों में बनकर तैयार हो गया था। सन् 1906 में इस गुरुकुल में 60 ब्रह्मचारी अध्ययन करते थे। सन् 1905 में स्वामी जी ने गुरुकुल विरालसी की स्थापना की थी। इस गुरुकुल ने भी अपने आरम्भिक दिनों में प्रशंसनीय उन्नति की और आर्यसमाज को अच्छे विद्वान मिले। स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती जी द्वारा स्थापित सबसे प्रसिद्ध गुरुकुल 'गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर' है। सम्वत् 1964 में गंगा के तट पर इस गुरुकुल की स्थापना की गई थी। पं0 गंगादत्त जी, पं0 भीमसेन जी तथा आचार्य नरदेव शास्त्री जी ने आरम्भ में ही इस गुरुकुल के लिये अपनी सेवायें प्रदान की थी। कुछ वर्ष पहले हम अपने कुछ मित्रों के साथ इस गुरुकुल के उत्सव में सम्मिलित होने जाया करते थे।

पं0 प्रकाशवीर शास्त्री जी इस गुरुकुल के यशस्वी स्नातक रहे। आप कई बार सांसद रहे। आपने कांग्रेस के कई दिग्गज नेताओं को निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में चुनाव लड़कर अपने व्यक्तित्व एवं भाषण कला में निपुणता के गुण के आधार पर हराया। हमने कई बार पं0 प्रकाशवीर शास्त्री जी के दर्शन किये। उन पर विस्तृत लेख भी लिखे। उनके अनुज भ्राता डा0 सत्यवीर त्यागी से भी हमारा सम्पर्क रहा है। पं0 प्रकाशवीर शास्त्री जी आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश के प्रधान रहे। उन्होंने सांसद रहते हुए अनेक स्मरणीय कार्य किये। हरिद्वार में गंगा तट पर उनके द्वारा बहुमंजिला एवं होटलनुमा आर्यसमाज बनाया गया था। वेदों के अंग्रेजी भाष्य कराने व उसके प्रकाशन में भी आपकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। सन् 1978 में रिवाड़ी के पास एक रेल दुर्घटना में उनकी मृत्यु हुई थी।

मृत्यु के समय वह संसद सदस्य थे।

गुरुकुल ज्वालापुर से सन् 1909 में एक मासिक पत्र 'भारतोदय' का प्रकाशन आरम्भ किया गया था जिसके सम्पादक सुप्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकार पं0 पद्मसिंह शर्मा थे। भारत के प्रथम राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र प्रसाद जी बड़े गौरव से कहा करते थे उनका प्रथम लेख भारतोदय पत्रिका में ही प्रकाशित हुआ था। स्वामी दर्शनानन्द जी ने रावलपिंडी के निकट मुस्लिम बहुल पर्वतीय स्थान में गुरुकुल चोहाभक्तां की स्थापना की थी। इस गुरुकुल की स्थापना 22 दिसम्बर, सन् 1908 को की गई थी। स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी इस गुरुकुल के आचार्य रहे। हम अनुमान भी नहीं कर सकते कि इन गुरुकुलों में 100 वर्ष पहले एक सौ से अधिक छात्र अध्ययन करते थे। इस गुरुकुल से स्वामी आत्मानन्द जी ने 'वैदिक फिलासफी' नामक एक उच्चस्तरीय मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी किया था। इस गुरुकुल चोहाभक्तां को ही गुरुकुल पोठोहार भी कहा जाता था। आर्यसमाज के गुरुकुल वैदिक धर्म की रक्षा व प्रचार के कार्य में शरीर में रीढ़ की हड्डी के समान रहे हैं। स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज को अनेक गुरुकुल स्थापित पर बड़ी संख्या में विद्वान दिये। वैदिक धर्म के प्रचार में स्वामी जी का योगदान अविस्मरणीय एवं अतुलनीय है।

स्वामी दर्शनानन्द जी का शरीर काम करते करते पेट के रोग से ग्रस्त हुआ। उनको आराम नहीं हो रहा था। वह दृढ़ प्रारब्धवादी थे। ईश्वर पर विश्वास रखते थे तथा औषधियों का सेवन नहीं करते थे। वह आगरा होते हुए आर्यसमाज अजमेर के उत्सव में गये। वहां उनका स्वास्थ्य अधिक खराब हो गया। गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर से पं0 गंगादत्त जी, पं0 नरदेव शास्त्री तथा गुरुकुल सिकन्दराबाद से पं0 मुरारीलाल शर्मा, स्वामी जी के पुत्र श्री नृसिंह शर्मा आदि अनेक लोग अजमेर पहुंचे। वहां से उन्हें स्वास्थ्य लाभ हेतु गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर लाया गया। यहां वह कुछ दिन रहे। इसके बाद पं0 मुरारी लाल शर्मा जी आपको गुरुकुल सिकन्दराबाद उपचारार्थ ले गये। इसी बीच उनके प्रिय भक्त डा0 कृष्णप्रसाद जी (हाथरस) सिकन्दराबाद पहुंचे और उन्हें अपने साथ हाथरस ले आये। वहां आर्यसमाज का उत्सव चल रहा था। आर्यसमाज के शीर्ष विद्वान पं0 तुलसी राम स्वामी, पं0 घासीराम जी आदि वहां आये हुए थे। स्वामी जी की आज्ञा पर उन्हें उत्सव के पण्डाल में शय्या पर ही ले जाया गया जिससे वह अपने भक्तों से मिल सकें। शरीर छूटने में 6 घंटे थे। इस अवस्था में भी वह रुक रुक कर धीमे स्वर में बोले 'जिस किसी को भी शास्त्रार्थ करना हो, कर ले। फिर न कहना।' स्वामी जी का अन्तिम समय बहुत निकट आ गया था। अन्तिम समय में उन्होंने कहा 'भद्र पुरुषों! हमारा अन्तिम नमस्ते स्वीकार कीजिए। ऋषि दयानन्द के 37 व्याख्यान हमने सुने थे। 37 वर्ष ही कार्य किया। ईश्वर आप लोगों को साहस दे कि आप अपने धर्म को समझें।' यह कह कर उन्होंने शरीर छोड़ दिया। यह 11 मई सन् 1913 का दिन था। इस प्रकार आर्यसमाज का एक जाज्वल्यमान नक्षत्र अपनी आभा बिखेर पर ईश्वर की व्यवस्था से परमगति को प्राप्त हो गया। स्वामी जी ने आर्यसमाज को अपने कार्यों से सुदृढ़ किया व उसके यश को बढ़ाया था। आज देश, धर्म और आर्यसमाज को स्वामी दर्शनानन्द जी के समान समर्पित ऋषिभक्त विद्वानों एवं प्रचारकों की आवश्यकता है जो लेखन, व्याख्यान तथा शास्त्रार्थ आदि से वैदिक धर्म का प्रचार कर सकें। हमने इस लेख में पं0 राजेन्द्र जिज्ञासु जी लिखित स्वामी दर्शनानन्द जी की जीवनी से सहायता ली है। उनका धन्यवाद है।

स्वाभाविक एवं सरल जीवन मार्ग के पथिक बनें

–सीताराम गुप्ता, पीतम पुरा, दिल्ली

प्रायः हम सब भली–भाँति सोच–समझकर ही हर कार्य करते हैं। करना भी चाहिए। यही सफलता का मूल मंत्र भी है। इसी प्रकार से हर समझदार व्यक्ति किसी प्रश्न का उत्तर भी अच्छी तरह से सोच–विचार करने के उपरांत ही देता है। कहा गया है कि बिना बिचारे जो करे सो पाछे पछताय। बिलकुल ठीक कहा गया है। गोस्वामी तुलसीदास भी मानस के अयोध्याकांड में एक स्थान पर लिखते हैं कि अनुचित उचित काजु किछु होऊ, समुझि करिअ भल कह सब कोऊ। सहसा करि पाछें पछिताहीं। कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं। अर्थात् कोई भी काम हो यदि उचित अनुचित का विचार करके किया जाए तो सब कोई उसे अच्छा कहते हैं। वेदों में भी यही कहा गया है और विद्वत्जन भी यही कहते हैं कि जो बिना विचारे जल्दी में किसी कार्य को करते हैं वे बाद में पछताते हैं और उन्हें बुद्विमान नहीं कहा जाता।

क्या हम बुद्धिमान हैं अर्थात् सचमुच सोच–समझकर ही हर कार्य करते हैं? हमारा प्रयास तो यही रहता है कि जल्दबाजी में कोई ऐसा कार्य न हो जाए जिससे लाभ के स्थान पर हानि हो जाए। या कोई ऐसी बात मुँह से न निकल जाए जिससे हमारी प्रतिष्ठा अथवा हमारे व्यवसाय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े। हम अपनी प्रतिष्ठा व किसी भी कार्य के आर्थिक पहलू पर तो विचार करते हैं लेकिन क्या उसके औचित्य–अनौचित्य पर भी विचार करते हैं? वास्तव में हम किसी भी चीज का व्यावहारिक पक्ष देखते हैं। तो क्या व्यावहारिकता बुरी बात है? व्यावहारिकता बुरी बात नहीं लेकिन जब हम ज़रूरत से ज्यादा व्यावहारिक हो जाते हैं तो हमारी सोच का नैतिक पक्ष उतना ही कमज़ोर हो जाता है। हम अंदर से उतने ही खोखले होते चले जाते हैं। व्यावहारिक होने के साथ–साथ ये भी अनिवार्य है कि हम उदात्त व सकारात्मक जीवन मूल्यों के भी पक्षधर हों।

बहुत से ऐसे लोग मिल जाएँगे जो हर कार्य को बहुत सोच–समझकर ही करते हैं लेकिन उनकी सोच अथवा समझदारी किसी काम की नहीं होती। जो लोग अवैधानिक अथवा गलत कार्यों में लिप्त होते हैं वे भी अत्यंत सोच–समझकर ही हर कार्य करते हैं लेकिन उनकी सोच दूसरे व्यक्तियों, समाज व राष्ट्र के लिए घातक होती है। ऐसे लोगों की सोच–समझ केवल असंख्य बुराइयों को जन्म देती है। ऐसे तथाकथित समझदार लोग जो व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए दूसरों को आर्थिक हानि अथवा मानसिक कष्ट पहुँचाने से बाज नहीं आते उनकी सोच के विषय में क्या कहें। ऐसी सोच वाले प्रगतिशील बच्चों की समझदारी के विषय में क्या कहा जाए जो कुछ निहित स्वार्थों के लिए बूढ़े माता–पिता को तड़पते हुए छोड़कर अन्यत्र जा बसते हैं। उन्हें परिवार व पोते–पोतियों के प्यार से वंचित करके उनका सर्वस्व छीन ले जाते हैं। उन लोगों की समझदारी को क्या कहें जिनके लिए सामाजिक मान्यताओं का कोई अर्थ अथवा महत्त्व नहीं होता।

यदि हम उचित–अनुचित की बात करें तो हर हाल में गलत का विरोध करना व सही का पक्ष लेना ही उचित माना जाता है लेकिन ऐसे अनेक व्यक्ति मिल जाएँगे यदि उनको किसी व्यक्ति से संबंध बनाए रखने से किसी भी तरह का लाभ होता है तो वे उस व्यक्ति की गलत बातों का भी

विरोध नहीं करते। ये व्यावहारिक होते हुए भी उचित नहीं कहा जा सकता लेकिन आज यही हो रहा है। गलत का विरोध न करना अथवा अपने हित के लिए गलत का समर्थन करना दोनों स्थितियाँ ही मनुष्यता के लिए घातक हैं। दूसरी ओर यदि हमें कुछ अधिक आर्थिक लाभ होने की संभावना नजर आ रही होती है तो हम रिश्ते–नातों को भी भूल जाते हैं। भूल ही नहीं जाते तोड़ भी डालते हैं। पैसों से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं आपसी संबंध और एक दूसरे पर विश्वास। और सबसे बड़ी बात तो ये है कि उचित निर्णय लेने अथवा सही बात कहने के लिए ज़्यादा सोचने–समझने की ज़रूरत ही नहीं होती।

आज हममें से अधिकांश व्यक्ति अधिकारों की बात तो करते हैं लेकिन कर्तव्यों की नहीं। अधिकारों के साथ कर्तव्य भी जुड़े होते हैं। लेनदारियां ही नहीं देनदारियां भी महत्त्वपूर्ण होती हैं। हम बहुत समझदार होते जा रहे हैं। हमें देनदारियां याद नहीं रहतीं। कोई याद दिलवाए तो कह देते हैं कि हमें पता नहीं था। हम कृतज्ञता नामक तत्त्व को भूलते जा रहे हैं। हमारे विकास में संपूर्ण समाज का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में जो सहयोग है उसका हमें भान ही नहीं। यदि हमें उसका भान है भी तो हम उसे स्वीकार करने की बजाय उसे महत्त्वहीन व अपने काल्पनिक योगदान को महत्त्वपूर्ण सिद्ध करने के विषय में चिंतन करने लग जाते हैं। हमारे अति समझदारी भरे निर्णयों का अन्य लोगों अथवा समाज पर क्या दुष्प्रभाव पड़ेगा हम कम ही सोचते हैं क्योंकि हम आत्मकेंद्रित होते जा रहे हैं।

यदि हमें बहुत अधिक सोच–समझकर बात करने अथवा व्यवहार करने की ज़रूरत नजर आ रही है तो इसका सीधा सा अर्थ है कि हमारा परस्पर विश्वास और हमारे आपसी संबंध खंडित हो चुके हैं अथवा खंडित होने के कगार पर हैं। बहुत अधिक सोच–समझकर बात करने अथवा व्यवहार करने का अर्थ है कि हम स्वाभाविकता का त्याग करके छल–कपट का आश्रय लेने जा रहे हैं। हमारे सोच–समझकर काम करने अथवा बात करने का कोई महत्त्व नहीं यदि उससे झूठ–फरेब का साम्राज्य प्रतिष्ठित होता है और हमारा आपसी विश्वास खंडित होता है। ऐसी समझदारी का कोई मूल्य नहीं जिससे घर–परिवार, समाज अथवा राष्ट्र विघटित होते हैं। हमारी ऐसी समझदारी जिससे हमारे बच्चों में हमसे भी ज्यादा ऐसी समझदारी विकसित हो जाए सचमुच बहुत भयानक है। ज्यादा समझदारी वास्तव में हमारे लिए अभिशाप के समान होती है। इस संदर्भ में निदा फाजली साहब का एक शेर याद आ रहा है – दो और दो का जोड़ हमेशा चार कहां होता है, सोच–समझ वालों को थोड़ी नादानी दे मौला।

जो हमेशा दो और दो चार के फेर में रहते हैं उनके निर्णयों को सही नहीं कहा जा सकता। घोर व्यवसायिकता व स्वार्थपरायणता से तटस्थ होकर ही हम सही निर्णय ले सकते हैं। इसके लिए ज़्यादा समझदारी की ज़रूरत नहीं। दिन को दिन और रात को रात कहने के लिए क्या सचमुच सोचने–समझने की ज़रूरत होगी? मान लीजिए कि दिन में धूप खिली हुई है और कोई पूछे कि आज कैसा मौसम है तो इसका एक ही उत्तर होगा कि आज धूप खिली हुई है। इसमें सोचने की क्या बात है? जब कोई चीज़ पूरी तरह से स्पष्ट हो और हम बिना बात सोचें कि क्या जवाब देना है तो हम गलत नहीं बहुत गलत दिशा में जा रहे हैं। यह संकेत है कि हम ज़रूरत से ज्यादा समझदार हो रहे हैं इसलिए अब थोड़ा नादान अथवा स्वाभाविक बनने का समय आ गया है।

इसका ये अर्थ बिलकुल नहीं कि हम सही दिशा में सोचना बंद कर दें। हम सही सोचें और गलत का स्पष्ट रूप से विरोध करें। जब हम सही सोच और स्पष्टता से बचना चाहते हैं तभी हम

ज़रूरत से ज़्यादा समझदारी का प्रदर्शन करने लगते हैं। हम अपनी अज्ञानता अथवा कमियों को छुपाने के लिए भी ज़्यादा समझदारी की बातें करने लगे हैं। ये भी सच्चाई पर परदा डालने जैसी ही बात है। सच्चाई पर परदा डालने के लिए ही यदि हम भली–भाँति सोच–समझकर बातें करते हैं तो इसे कैसे महत्त्व दिया जा सकता है? यदि हम सच्चाई पर परदा डालने की बजाय उसे सरलता से स्वीकार कर लें तो इससे बड़ी समझदारी की बात हो ही नहीं सकती।

आज हमें जीवन के हर क्षेत्र में अधिक तथाकथित समझदार बनने की अपेक्षा थोड़ा नादान बनने की जरूरत है। बच्चों को हम नादान कह देते हैं क्योंकि वे बिना सोचे–समझे कि इसका क्या परिणाम होगा सच बोल देते हैं। ये नादानी नहीं सरलता व निष्कपटता है। हमारे लिए भी यही श्रेयस्कर होगा कि हम बच्चों की तरह नादान अर्थात् सरल व निष्कपट बनने का प्रयास करें। वैसे इसमें प्रयास करने जैसी भी कोई बात नहीं। स्वाभाविकता के लिए किसी प्रकार के विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं हाती। अस्वाभाविक, गलत अथवा काल्पनिक तथ्यों को स्थापित करने के लिए ही अधिक प्रयास करने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के प्रयासों में ही हमारी अधिकांश ऊर्जा का दुरुपयोग हो रहा है।

जो कम समझदार अथवा नादान व्यक्ति होता है उसकी ऊर्जा का दुरुपयोग नहीं होता क्योंकि वो एक दम से गलत को गलत और सही को सही कह देता है इसलिए हमें ज़्यादा समझदार बनने की बजाय थोड़ा नादान ही बने रहने की अत्यंत आवश्यकता है ताकि हमारी ऊर्जा का सही व सार्थक उपयोग हो सके। इसलिए सोच–समझकर लिए गए ऐसे निर्णयों का कोई मूल्य नहीं जिनके कारण हमारी ऊर्जा का दुरुपयोग हो और साथ ही सत्य का दम घुट जाए और असत्य प्रतिष्ठित हो जाए। हमारी सोच–समझ बस ऐसी हो जिससे सकारात्मक जीवन मूल्य प्रतिष्ठित हो सकें। यह तभी संभव है जब हमारी सोच केवल सकारात्मक हो। हम पक्षपातरहित होकर निडरतापूर्वक अपनी बात कहने का साहस जुटा पाएँ। इसके लिए अधिक समझदारी की ज़रूरत ही नहीं। मात्र थोड़ी सी नादानी अथवा सरलता ही इसके लिए पर्याप्त होगी।

महत्वपूर्ण सूचना

वैदिक साधन आश्रम तपोवन सोसायटी, देहरादून द्वारा यह निर्णय लिया गया है कि ग्रीष्मोत्सव का कार्यक्रम 4 मई 2022 से 8 मई 2022 तक आयोजित किया जायेगा। इस अवसर पर वैदिक विद्वान आचार्य डॉ. वागीष जी, गुरुकुल एटा एवं पं. उमेशचन्द्र कुरुश्रेष्ठ जी, आगरा तथा भारत वर्ष के प्रसिद्ध भजनोपदेशक कुलदीप जी, बिजनौर पधार रहे हैं। स्वामी चितेश्वरानन्द सरस्वती जी यज्ञ के ब्रह्मा होंगे। आप सभी सपरिवार पधारकर कार्यक्रम के शोभा बढाने की कृपा करें।

मकर-संक्रान्ति पर्व 14 जनवरी पर

मकर संक्रान्ति पर्व कब, क्यों एवं कैसे मनाते हैं

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून

भारतीय पर्वों में एक पर्व मकर संक्रान्ति पर्व है। यह शीतकाल में जनवरी महीने की 14 जनवरी को मनाया जाता है। यह माना जाता है कि इस दिन सूर्य वा पृथिवी मकर संक्रान्ति में प्रवेश करते हैं। इसी दिन से रात्रि की अवधि का घटना तथा दिन (सूर्योदय से सूर्यास्त) की समयावधि का बढ़ना आरम्भ होता है। मकर संक्रान्ति से दिन के समय के बढ़ने की यह प्रक्रिया निरन्तर 6 महीनों तक चलती रहती है। इन 6 महीनों की अवधि को ''देवयान'' के नाम से जाना जाता है। अतीत में यह मान्यता रही है कि देवयान में शरीर त्याग करने से आत्मा की उत्तम गति होती है। अतः इस पर्व के महत्व व इसे मनाये जाने के कारण को हमें जानना चाहिये और इसे मनाकर प्राचीन काल से चली आ रही परम्परा को सुरक्षित रखना चाहिये। मकर संक्रान्ति पर्व विषयक हमें निम्न जानकारी उपलब्ध है।

हमारी पृथिवी सूर्य की परिक्रमा करती है। पृथिवी सूर्य की एक परिक्रमा में जो समय लेती है उसे ''सौर वर्ष'' कहा जाता है। पृथिवी सूर्य के चारों ओर कुछ लम्बी जिस वर्तुलाकार परिधि पर परिभ्रमण करती है, उस को ''क्रान्तिवृत'' कहते हैं। खगोल ज्योतिषियों द्वारा इस क्रांतिवृत्त के 12 भाग कल्पित किए हुए हैं और उन 12 भागों के नाम उन–उन स्थानों पर आकाश में नक्षत्र पुंजों से मिलकर बनी हुई कुछ मिलती–जुलती आकृति वाले पदार्थों के नाम पर रख लिये गए हैं। जैसे 1 मेष, 2 वृष, 3 मिथुन, 4 कर्क, 5 सिंह, 6 कन्या, 7 तुला, 8 वृश्चिक, 9 धनु, 10 मकर, 11 कुम्भ तथा 12 मीन। क्रान्ति वृत्त का यह प्रत्येक 12 वां भाग वा आकृति ''राशि'' कहलाती है। जब पृथिवी एक राशि से दूसरी राशि में संक्रमण करती है तो उसको 'संक्रान्ति' कहते हैं। लोक में उपचार से पृथिवी के संक्रमण को सूर्य का संक्रमण कहने लगे हैं। छः मास तक सूर्य क्रान्तिवृत्त से उत्तर की ओर उदय होता रहता है और छः मास तक दक्षिण की ओर निकलता रहता है। प्रत्येक 6 मास की अवधि का नाम 'अयन' है। सूर्य के उत्तर की ओर उदय की अवधि को 'उत्तरायण' और दक्षिण की ओर उदय की अवधि को 'दक्षिणायन' कहते हैं। उत्तरायण–काल में सूर्य उत्तर की ओर से उदय होता हुआ दीखता है और उसमें दिन बढ़ता जाता है और रात्रि घटती जाती है। दक्षिणायन में सूर्योदय दक्षिण की ओर होता हुआ दृष्टिगोचर होता है और उसमें रात्रि बढ़ती जाती है और दिन घटता जाता है। सूर्य की मकर राशि की संक्रान्ति से उत्तरायण और कर्क संक्रान्ति से दक्षिणायन प्रारम्भ होता है। सूर्य के प्रकाशाधिक्य के कारण उत्तरायण विशेष महत्वशाली माना जाता है अतएव उत्तरायण के आरम्भ दिवस मकर की संक्रान्ति को भी अधिक महत्व दिया जाता है और स्मरणातीत–चिरकाल से उस पर पर्व मनाया जाता है। यद्यपि इस समय उत्तरायण परिवर्तन ठीक–ठीक मकर संक्रान्ति 14 जनवरी को नहीं होता और अयन–चयन की गति बराबर पिछली ओर को होते रहने के कारण संवत् 1994 विक्रमी में मकर–संक्रान्ति से 22 दिन पूर्व धनु राशि के 7 अंश 24 कला पर ''उत्तरायण'' होता है। इस परिवर्तन को लगभग 1350 वर्ष लगे हैं परन्तु पर्व मकर–संक्रान्ति के दिन ही होता चला आता है।

इससे सर्वसाधारण जनों का जो 'मकर–संक्रान्ति' पर पर्व मानते हैं ज्योतिष–शास्त्र से अनभिज्ञता का कुछ परिचय मिलता है, किन्तु शायद पर्व का चलते न रहना अनुचित मानकर मकर–संक्रान्ति के दिन ही उत्तरायण या देवयान पर्व मनाने की रीति चली आती हो।

मकर संक्रान्ति पर्व क्यों मनाया जाता है, इसका कारण इस दिन आकाश में घट रही घटना को स्मरण रखना व उसको जानने का भाव प्रतीत होता है। मकर संक्रान्ति को मनाने की विधि हमारे पूर्वजों ने ऋतु को ध्यान में रखकर बनाई है। मकर–संक्रान्ति के अवसर पर शीत अपने यौवन पर होता है। जन–वासों सहित जगंल, वन, पर्वत आदि सभी स्थानों पर शीत का आतंक छा रहा है, चराचर जगत् शीतराज का लोहा मान रहा है, हाथ–पैर जाड़े से सिकुड़ जाते हैं, ''रात्रौ जानु दिवा भानुः'' रात्रि मे जंघा और दिन में सूर्य, किसी कवि की यह उक्ति दोनों पर आजकल ही पूर्णरूप से चरितार्थ होती है। दिन की अब तक यह अवस्था थी कि सूर्यदेव उदय होते ही अस्तांचल के गमन की तैयारियां आरम्भ कर देते थे, मानो दिन रात्रि में लीन ही हुआ जाता था। रात्रि सुरसा राक्षसी के समान अपनी देह बढ़ाती ही चली आती थी। अन्त को उस का भी अन्त आया। मकर संक्रान्ति के दिन मकर ने उसको निगलना आरम्भ कर दिया होता है। इस दिन सूर्य देव ने उत्तरायण में प्रवेश किया होता है। इस काल की महिमा संस्कृत साहित्य में वेद से लेकर आधुनिक ग्रन्थों पर्यन्त सविशेष वर्णन की गई है। वैदिक ग्रन्थों में उस को 'देवयान' कहा गया है और ज्ञानी लोग स्वशरीर त्याग तक की अभिलाशा इसी उत्तरायण में रखते हैं। उनके विचारानुसार इस समय देह त्यागने से उन की आत्मा सूर्य लोक में होकर प्रकाश मार्ग से प्रयाण करेगी। आजीवन ब्रह्मचारी रहे भीष्म पितामह ने इसी उत्तरायण के आगमन तक शर–शय्या पर शयन करते हुए प्राणों के उत्क्रमण की प्रतीक्षा की थी। ऐसा प्रशस्त समय किसी पर्व के बनने से कैसे वंचित रह सकता था। आर्यजाति के प्राचीन नेताओं ने मकर–संक्रान्ति (सूर्य की उत्तरायण होने की संक्रमण तिथि) का पर्व निर्धारित कर दिया। यह मकर संक्रान्ति का पर्व चिरकाल से चला आ रहा है। यह पर्व भारत के प्रायः सभी प्रान्तों में प्रचलित है। इसे एक देशी पर्व न कहकर सर्वदेशी पर्व कहा जा सकता है। सब प्रान्तों में इसे मनाने की परिपाटी में भी समानता पाई जाती है। सर्वत्र शीतातिशय निवारण के उपचार प्रचलित हैं।

वैद्यक शास्त्र में शीत के प्रतीकार तिल, तेल तथा तूल (रूई) बताए गए हैं। इन तीनों में तिल सबसे मुख्य है। इसलिए पुराणों में पर्व के सब कृत्यों में तिलों के प्रयोग का विशेष महात्म्य गाया गया है। वहां तिल को पापनाशक कहा गया है। शीत ऋतु में शीत से होने वाले कष्टों वा दुःखों के निवारण में कुछ सीमा तक तिल का महत्व है। अतः इसे पाप व दुःखनाशक कहना उचित ही है। किसी पुराण का प्रसिद्ध श्लोक हैः 'तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी। तिलभुक् तिलदाता च षट्तिलाः पापनाशनाः।।' इसका अर्थ है तिल मिश्रित जल से स्नान, तिल का उबटन, तिल का हवन, तिल का जल, तिल का भोजन और तिल का दान ये छः तिल के प्रयोग पाप वा दुःखनाशक हैं।

मकर–संक्रान्ति के दिन भारत के सब प्रान्तों में तिल और गुड़ या खांड के लड्डू बना–बनाकर, जिन को 'तिलवे' कहते हैं, दान किये जाते हैं और इष्ट–मित्रों में बांटे जाते हैं। महाराष्ट्र राज्य में इस दिन तिलों का 'तीलगूल' नामक हलवा बांटने की प्रथा है। सौभाग्यवती स्त्रियां तथा कन्यायें इस दिन अपनी सहेलियों से मिलकर उन को हल्दी, रोली, तिल और गुड़ भेंट करती हैं। प्राचीन ग्रीक लोग भी वधू–वर की

सन्तान वृद्धि के निमित्त तिलों का पक्वान्न बांटते थे। इस से ज्ञात होता है कि तिलों का प्रयोग प्राचीनकाल में विशेष गुणकारक माना जाता रहा है। प्राचीन रोमन लोगों में मकर–संक्रान्ति के दिन अपने इष्ट मित्रों को अंजीर, खजूर और शहद भेंट देने की रीति प्रचलित थी। यह भी मकर संक्रान्ति पर्व की सार्वजनिकता और प्राचीनता का परिचायक है।

मकर संक्रान्ति पर्व पर दीन–दुःखियों को शीत निवारणार्थ कम्बल और घृत आदि दान करने की प्रथा सनातनी बन्धुओं में प्रचलित है। 'कम्बलवन्तं न बाधते शीतम्' की श्लिष्ट उक्ति संस्कृत में प्रसिद्ध है। घृत को भी वैद्यक में ओज और तेज को बढ़ाने वाला तथा उदर–अग्निदीपक कहा गया है। आर्य पर्वों पर दान करना अवश्यमेव ही कर्तव्य होता है। गीता में भी देश, काल और पात्र का विचार कर दान देने को सात्विक दान कहा गया है। तिल के लड्डू व अन्य मिष्ठान्न पदार्थ बनाकर तथा इस दिन सुपात्र दीन–दुःखी लोगों व गुरुकुल आदि संस्थाओं को दान करके इस पर्व को मनाया जाना चाहिये। इस पर्व को मनाने की पद्धति श्री पं. भवानी प्रसाद जी लिखित पुस्तक 'आर्य पर्व पद्धति' में दी गई है। इस दिन वायु–जल शोधक एवं आध्यात्मिक लाभों से युक्त अग्निहोत्र यज्ञ–परिवार के सदस्यों के साथ मिलकर किया जाना चाहिये। उस यज्ञ में पुस्तक में दिए गये मन्त्रों से विशेष आहुतियां दी जानी चाहियें। हवन सामग्री में तिलों एवं शुद्ध घृत की पर्याप्त मात्रा होनी चाहिये। यज्ञ के बाद तिल के लड्डू (तिलवे) होम यज्ञ में समागत–पुरुषों को हुतशेष के रूप में समर्पण किये जाने चाहिये। अपनी सामर्थ्यानुसार कम्बल व अन्य शीतनिवारक वस्त्र निर्धन व दीन–दुखी बन्धुओं को वितरित करने का प्रयत्न भी सबको करना चाहिये। हमने इस लेख की सामग्री को पं. भवानी प्रसाद जी की पुस्तक आर्य पर्व पद्धति से लिया है। उनको सादर नमन एवं धन्यवाद है। हम आशा करते हैं कि पाठक इस लेख की जानकारी से लाभान्वित होंगे। सब इस पर्व को अवश्य मनायेंगे जिससे यह प्राचीन परम्परा बन्द न होवे, सदा चलती रहे और धर्म प्रेमी आर्य जनता को इस दिन के महत्व को जानने का अवसर मिलने सहित हम सब इस दिन यज्ञ, स्वाध्याय तथा मिष्ठान्न का सेवन कर आनन्दित होते रहें।

मन एक जड़ पदार्थ है और आत्मा चेतन पदार्थ

—स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक, रोहतक

संसार में दो प्रकार के पदार्थ होते हैं। एक जड़ पदार्थ, और दूसरे चेतन पदार्थ। 'जड़ पदार्थ में अपनी कोई इच्छा, स्वयं क्रिया करने की योग्यता, ज्ञान आदि गुण नहीं होते। चेतन पदार्थ में ये सब गुण होते हैं। चेतन पदार्थ अपनी इच्छा से, अपने ज्ञान से स्वयं क्रिया कर सकता है।'

स्कूटर कार हवाई जहाज इत्यादि जड़ पदार्थ हैं। ये स्वयं क्रिया नहीं कर सकते। क्योंकि इन में अपनी कोई इच्छा ज्ञान आदि गुण नहीं हैं।

आत्मा चेतन पदार्थ है। इस में अपनी इच्छा ज्ञान प्रयत्न अर्थात स्वयं क्रिया करने की क्षमता इत्यादि गुण हैं। 'इसलिए आत्मा अपनी इच्छा और ज्ञान आदि से इन सब जड़ पदार्थों का संचालन करता है। जैसे स्कूटर कार रेल हवाई जहाज आदि जड़ पदार्थ हैं, ऐसे ही इन के समान मन भी एक जड़ पदार्थ है। जैसे चेतन ड्राइवर, स्कूटर कार रेल हवाई जहाज इत्यादि जड़ पदार्थों को चलाता है। ऐसे ही चेतन आत्मा भी, जड़ मन का संचालन करता है। 'आत्मा अपनी इच्छा ज्ञान प्रयत्न आदि गुणों से मन को क्रियाशील करता है। मन में विचार उठाता है। फिर मन के माध्यम से इंद्रियों को प्रेरित करके इंद्रियों तथा शरीर आदि सब जड़ पदार्थों से क्रियाएं करता और लाभ लेता है'।

'मन जड़ होने से स्वयं कोई इच्छा नहीं करता। उसमें कोई अपना ज्ञान, एवं प्रयत्न अर्थात स्वयं क्रिया आदि करने की क्षमता नहीं है।' यदि कोई व्यक्ति इस बात को ठीक प्रकार से समझ ले, और मन का संचालन करने का अभ्यास कर ले, तो वह मन का इंद्रियों का शरीर आदि सब जड़ पदार्थों का राजा बन जाएगा, और अपनी इच्छा के अनुसार इन वस्तुओं का संचालन करके बहुत अधिक सुखी होगा।'

परंतु आजकल लोग इस बात को ठीक से नहीं जानते, नहीं समझते। 'अधिकांश लोग मन को चेतन पदार्थ मानते हैं। यह अविद्या है।' इसलिए वे अपनी अविद्या के कारण पहले तो मन को चेतन मानकर मन को क्रियाशील कर देते हैं, मन में ढेर सारी इच्छाएं उठा देते हैं, ढेर सारी योजनाएं बनाते रहते हैं, और फिर अपनी अविद्या या मूर्खता के कारण मन को चेतन मानकर उसके दबाव से उन इच्छाओं की पूर्ति में लगे रहते हैं। 'जैसे कोई ड्राइवर पहले तो स्वयं कार को बहुत तेज चला देता है। फिर जब कार नियंत्रण से बाहर हो जाती है, तब वह उसे रोकने की कोशिश करता है। परंतु कार में गति का दबाव इतना अधिक होता है, कि वह चाहते हुए भी उसे रोक नहीं पाता। तब कार का ड्राइवर ऐसा अनुभव करता है, कि वह कार को नहीं चला रहा, बल्कि कार उसे घसीटकर ले जा रही है। इस स्थिति का दोषी कार नहीं, बल्कि स्वयं ड्राइवर है।'

यही स्थिति आत्मा और मन की रहती है। 'पहले तो आत्मा मन को बहुत तीव्र गति से चलाता है। फिर जब रोकना चाहता है, तो मन में इतना दबाव उत्पन्न हो चुका होता है, कि आत्मा उसे रोकना चाहते हुए भी रोक नहीं पाता है। इस स्थिति का दोषी भी मन नहीं, बल्कि आत्मा ही है। इस स्थिति में व्यक्ति ऐसा अनुभव करता है कि जैसे वह मन को नहीं चला रहा, बल्कि मन उसे घसीटे चला जा रहा है। यह सब स्थिति आत्मा की अपनी अविद्या के कारण ही उत्पन्न होती है। इस अविद्या से बचने का प्रयत्न करें।'

'जैसे ड्राइवर कार को चलाता है, कार ड्राइवर को नहीं। ऐसे ही चेतन आत्मा मन को चलाता है, मन आत्मा को नहीं। 'इस प्रकार से गहराई से इस सत्य को समझ कर यदि आप मन का संचालन करें, तो आप बहुत अधिक सुखी हो जाएंगे।

'अब आप शरीर तो धारण कर ही चुके हैं। मन इंद्रियां आपके पास हैं, और आप प्रतिदिन इनका संचालन कर ही रहे हैं। यदि आप मन को जड़ पदार्थ समझते हुए अपनी इच्छा अनुसार इसका संचालन करें, तो यह आपके नौकर की तरह काम करेगा। और यदि ऐसा नहीं समझेंगे, तो यह आपका राजा बन बैठेगा, तथा आप स्वयं ही अपनी अविद्या के कारण इस मन के पीछे घिसटते चले जाएंगे, और बहुत से दुख भोगेंगे।'

योगेश्वर महाराज दयानन्द

–प्रो. राजेन्द्र ''जिज्ञासु''

वे प्रथम विचारक–सुधारक थे

महर्षि दयानन्द विश्व के सर्वप्रथम विचारक व मानवोद्धारक थे, जिन्होंने लिंग जाति व रंगभेद के बिना सबको आर्यसमाज के सभासद् बनने का समान अधिकार दिया। तब तक विश्व के किसी भी देश में स्त्रियों को पुरुषों के समान मतदान का अधिकार प्राप्त नहीं था। विश्व में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का विचार भी उनकी देन है। वे निःशुल्क शिक्षा के प्रथम उद्घोषक थे। वे अपने देश में जन जागरण के लिए पूर्व पश्चिम व उत्तर दक्षिण में सघन भ्रमण करने वाले प्रथम नेता व सुधारक थे। यदि उन्हें कुछ वर्ष और जीने का अवसर मिल जाता तो वे कन्याकुमारी तक अपना शंखनाद सुनाने अवश्य जाते। उन्होंने शताब्दियों के पश्चात् वेद–धर्म के द्वार सबके लिए खोल दिये।

राष्ट्र का आत्मविश्वास जगाया–

लौह पुरुष सरदार पटेल ने अपने अन्तिम भाषण में कहा था,

''The Greatest Contribution of Swami Dayananda was that he saved the country from falling into the morass of helplessness. He actually laid the foundation of India's freedom.''

अर्थात् स्वामी दयानन्द की सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने देश को हीनता दीनता की दलदल में गहरा गिरना से बचाया। उन्होंने ही वास्तव में भारतीय स्वाधीनता की आधारशिला रखी।

इतिहासकारों का कार्य सरल हो जायेगा

महर्षि दयानन्द जी के व्यक्तित्व का मूल्यांकन करने वाले इतिहासवेत्ताओं को ऋषि के विरोधियों व ऋषि से विचार भेद रखनेवालों के विचारों का अवलोकन अवश्य करना चाहिए। इससे इतिहासकारों का कार्य बहुत सरल हो जायेगा। कविवर सत्यपाल जी ''सरस'' ने कभी लिखा थाः–

'दयानन्द के सम दयानन्द ही था'

इस कथन में बहुत गूढ़ सत्य है। पौराणिक आरती ''जय जगदीश हरे'' के रचयिता श्री श्रद्धाराम फलौरी ने जी जान से ऋषि का विरोध किया। प0 मोतीलाल नेहरू नास्तिक थे। मथुरा के श्री मुन्ददेव पौराणिक मताभिमानी थे। मथुरा के पण्डे महर्षि की वैदिक विचारधारा को अपनी आजीविका में बाधक मानकर ऋषि के शत्रु बन गये। 'मित्रविलास' व क्षत्री हितकारी पत्र ने ऋषिवर के बलिदान के पश्चात् भी जी भर कर उनके विरोध में अपने कालम किये तथापि इनको भी ऋषि के निर्मल जीवन, साहस, विद्या व पाण्डित्य का गुणगान करना पड़ा।

सत्य के लिए, देश के लिए और वैदिक धर्म के लिए ऋषि ने अपना जीवन वार दिया। उनकी जान लेने के लिए देश धर्म के कई शत्रु षड्यन्त्र रचने में लगे हुए थे। कादियानी नबी मिर्जा गुलाम अहमद को अपनी सरकार भक्ति व अंग्रेज परस्ती पर बड़ा अभिमान था। मिर्जा ने भारतीय क्रान्तिकारी देशभक्तों को 'नमकहराम' तक लिखा है। अंग्रेजी राज का विरोधी होने पर देशभक्तों को मिर्जा ने ऐसी–ऐसी गालियां दी। विदेशी राज के पोषक समर्थक मिर्जा ने अपने ग्रन्थ 'हकीकत–उल–वही' में ऋषि की हलाकत (मरवाने) का श्रेय लिया है। मिर्जा का ऋषि की

मौत में कितना हाथ था? यह तो बता पाना कठिन है, परन्तु इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह षड्यन्त्र बड़ा गहरा था।

श्री श्रद्धारामजी ने ऋषि के नाम एक पत्र लिखा था। मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में सुरक्षित पड़ा है। इसमें आपने ऋषि को लिखा है, '' अहो आश्चर्य! मैंने जो बातें आपकी संस्कार विधि और सन्ध्या में से लोगों को सुनाई थीं यदि आप भी उस समाज में होते तो आप मुझको कण्ठ से लगा लेते कि मैंने किस चातुर्य से लोगों के चित्तों से उन भ्रमों को दूर किया था जो आपके विषय में उठा रहें हैं। मेरे सारे उपदेश का सिद्धान्त यह था कि जो सन्देह लोगों को सुन–सुनाकर उस महात्मा पर उठ रहे हैं, वे सच्च नहीं, सच्च वह है कि जो उनकी पुस्तकों से प्रकट होता है।''

इस पत्र की एक–एक पंक्ति से पता चलता है कि प0 श्रद्धाराम के रोम–रोम में ऋषि के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी। उसका हृदय बदल गया। वह मृत्यु से पूर्व ऋषि का गुणगान करने लगा। वह ऋषि की महानता है।

मथुरा के मुकुन्ददेव जी ने गुरुवर दण्ड़ी विरजानन्द जी का जीवन–चरित लिखा था। इनके पिता दण्ड़ी जी के शिष्य थे, परन्तु यह परिवार आर्यसमाज की विचारधारा से दूर–दूर ही रहा। श्री मुकुन्ददेव ने एक से अधिक बार ऋषि दयानन्द के दर्शन किये। अपनी इस पुस्तक मे ऋषि की चर्चा करते हुए आपने लिखा है, ''स्वामी दयानन्दजी में साहस, गम्भीर्य आदि तो गुण थे ही परन्तु ब्रह्मचर्य गुण अद्वितीय व लोकोत्तर था जिस गुण का होना भी आज असम्भव ही है।''

'क्षत्री हितकारी' पत्र ऋषि का विरोध किये बिना नहीं रह सकता था। यह उसकी विवशता थी, परन्तु श्री महाराज के देह–त्याग पर इसके सम्पादक के अपने लम्बे लेख में ''शोक! शोक!! शोक!!'' करके आगे लिखा था, ''हमको शोक है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसा पण्डित इस काल में होना कठिन है, यह पुरुष बड़ा विलक्षण बुद्धि और परमोत्साही उद्योगी था। यह सामर्थ्य इसी महाशय की थी कि श्रुति स्मृति के अर्थ को यथार्थ जाने, यह पुरुष पूर्ण आयु को पहुंचने के योग्य था, परन्तु काल यह कब सोचता है।''

इस पत्र के सम्पादक थे श्री वीरसिंह वर्मा। अंगेजी पठित भारतीय वर्ग मेक्समूलर के नाम से विशेष परिचित व प्रभावित है।

दो बातों को हमारे अंग्रेजी पठित बंधु नहीं जानते।

१. मेक्समूलर ने वेदादि सद्ग्रन्थों के अर्थ इनके मर्म के प्रकाश के लिए किये थे। उसका प्रयोजन वेद के अर्थों का अनर्थ करके सम्राज्य की रक्षा व सेवा करना था। वह यह सब कुछ ईसाई मत के लिए स्थान बनाने के लिए कर रहा था। उसे इस कार्य के लिए ही शासन ने नौकर रखा था। उसके अपने पत्रों में उसके इस उद्देश्य के विषय में स्पष्ट सबकुछ लिखा मिलता है। फिर भी ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य व ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पढ़कर इस वेदनिन्दक के विचार बदल गये। इसका पता हमारे अंगेजी पठित लोगों को नहीं है।

महर्षि दयानन्द जी ने अपने ग्रन्थों में मेक्समूलर के आर्य मिशनरी हैं। आप मेरे सहयोगी बन गये। मैंने यत्र तत्र बिखरी पड़ी उनकी कविताओं की खोज आरम्भ कर दी। ''आर्य मुसाफिर'' के अंकों की यहाँ वहाँ खोज को निकल पड़ा। पुरानी भजन पुस्तकों की खोज में लगा। एक–एक करके कई कवितायें खोजकर छपने दे दीं।

जब जब इस कार्य को पूरा हुआ समझकर पुस्तक के छपवाने की व्यवस्था की तभी किसी नई रचना का पता चला तो प्रकाशन में विलम्ब करना पड़ा। अब भी ऋषि दयानन्दजी पर लिखी उनकी एक कविता 'सच्चा पथप्रदर्शक', शिवरात्रि की रात और धर्मवीर की शहादत' 'ऋषि दयानन्द

की मौत का नजारा' तथा ऋषि की गुरु–दक्षिणा' यह चार महत्वपूर्ण कविताएं इस संग्रह में नहीं है। 'ऋषि दयानन्द का उपकार' एक और कविता इस संग्रह में नहीं दी गई। इन्हें खोजने में समय लग गया। यदि यह पुस्तक जनता ने अपना ली तो दूसरे संस्करण में इन पाँचो कविताओं को भी दे दिया जायेगा।

हमने प्रयास तो बहुत किया कि स्वामी श्रद्धानन्द जी व महाशय राजपाल आदि हुतात्माओं पर भी उनकी रचनायें मिल जायें परन्तु सफलता नहीं मिली। 'प्रेम' जी के हृदय में भक्ति भाव था, देश जाति का दर्द था, धर्म प्रेम थे, सोज(तड़पन) थी और भावों की अभिव्यक्ति करने की कला ईश्वर ने उन्हें दे रखी थी। 'सच्चा पथ प्रदर्शक' के अन्तिम तीन पद्य उनकी भक्ति व तड़पन का सजीव चित्र है–

अज्ञान से जो जन जननी का अपमान हमेशा करते थे
और घोर अविद्या में फँसकर पापों का पानी भरते थे
उन सबके अपनी भक्ति से उस वीर ने था बेदार किया
मत मतान्तर के दुर्ग को था इस आन में ही भरमार किया
वह भक्त शिरोमणि करुणामय था पुंज दया और आनन्द का
वह सच्चा पथ प्रदर्शक था और उसका नाम दयानन्द था

वेद विषयक भ्रामक विचारों का प्रतिवाद करते हुए वेद मन्त्रों के सच्चे अर्थों का प्रकाश किया। महर्षि के बलिदान के पश्चात् मेक्समूलर ने राजाराम मोहन राय, केशवचन्द्र सेन व ऋषि दयानन्द का जीवन–चरित्र लिखने का निश्चय किया। वह ऋषि का चरित्र नहीं लिख पाया। आवश्यक तो नहीं कि मनुष्य जो सोचे वह हो ही जाय। फिर भी इस प्रकार का एक समाचार पत्रों में छपा था। इस पर कुछ पत्रों में सम्पादकीय भी छपे। महर्षि दयानन्द के तेजोमय जीवन व उनकी सार्वभौमिक वैदिक विचारधारा का प्रभाव देश–विदेश के लोगों पर बहुत गहरा पड़ रहा था। मुनिवर गुरुदत्त विद्यार्थी, पं0 लेखराम व श्री पं0 शिवशंकर काव्यतीर्थ जैसे विद्वानों को सेवा का लम्बा समय मिलता और आर्यसमाज वेद–प्रचार को ही सर्वस्व मानकर चलता वो देश और विश्व का इतिहास कुछ और ही होता।

अन्य–अन्य लोग ऋषि के बारे क्या सोचते व लिखते थे इसकी चिन्ता किये बिना वह महापुरुष वेदमार्ग पर निर्भय होकर चलता गया। बढ़ता गया। उसे न तो अपनी प्रशंसा की भूख थी और न वह निन्दा सुनकर विचलित होता था। वह ऋषि अपने तपोबल, आत्मबल, बह्मचर्य, ईश्वर–विश्वास व पाण्डित्य के कारण महान था। वह अपने सर्वस्व त्याग के कारण पूजनीय था। दूसरों के प्रमाण पत्रों के कारण वह बड़ा नहीं था। उसका बड़प्पन इसी में था कि वह ईश्वर की आज्ञा के पालन में सदैव तत्पर रहता था। वह उस श्रेणी का व्यक्ति नहीं था जो ईश्वर की आज्ञा को भंग करके, सृष्टि–नियम तोड़कर अपने बड़प्पन को दिखाता या बनाता था।

महर्षि का तो घोष ही यही है कि ईश्वर स्वयं भी अपने नियमों को नहीं तोड़ता। वह प्रभु अपने नियम तोड़े ही क्यों?

''जिनका सहाय धर्म है उसी का सहाय परमेश्वर है। जब बुरे बुराई न छोड़े, तो भले भलाई क्यों छोडें।''

महर्षि का सम्पूर्ण जीवन व्यवहार अपने इस वचन की व्याख्या है। उनके परोपकारमय जीवन की एक–एक घटना इस वाक्य का भाष्य है।

कौन गिने और कौन गिनावे 'जिज्ञासु' उसके उपकार।

उस नरनामी योगी ध्यानी दयानन्द की जय–जयकार।।

सब धनों में उत्तम धन ''विद्याधन'' है, और सब विद्याओं में उत्तम ''वेदों की अध्यात्म'' विद्या है

–स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक, रोहतक

मनुष्य के दो प्रयोजन हैं। एक सब दुःखों की निवृत्ति हो जाए। और दूसरा–उत्तम सुखों की प्राप्ति हो जाए। मनुष्य का सारा प्रयत्न इन्हीं दो प्रयोजनों की सिद्धि के लिए होता है। ''भोजन, वस्त्र, मकान, धन, बल, विद्या, बुद्धि, सम्मान आदि को मनुष्य, क्यों प्राप्त करना चाहता है? सब दुखों की निवृत्ति के लिए, तथा उत्तम सुखों की प्राप्ति के लिए।''

''परंतु जो दुख निवृत्ति और सुख की प्राप्ति भोजन वस्त्र मकान आदि भौतिक साधनों से होती है, उससे कई गुना अधिक उत्तम दुख निवृत्ति तथा सुख की पाप्ति वेदों की विद्याओं से होती है।'' जैसे गणित विद्या भूगोल विद्या खगोल विद्या विमान विद्या नौका विद्या आदि। इन सब विद्याओं में भी जो सुख मिलता है, उससे भी कई गुना अधिक उत्तम सुख, अध्यात्म विद्या अथवा योग विद्या से मिलता है। इसलिए व्यक्ति को अपने जीवन यापन के लिए जहां भौतिक धन संपत्ति की आवश्यकता है, वहां विद्याओं की भी आवश्यकता है। ''विशेष रूप से अध्यात्म विद्या की। इस अध्यात्म विद्या की प्राप्ति वेदों और ऋषियों के ग्रंथों से ठीक–ठीक होती है।''

यूं तो आजकल सैकडों संप्रदाय अपना अपना कार्य कर रहे हैं। परंतु उन संप्रदायों में जो अध्यात्म विद्या सीखने सुनने को मिलती है, वह पूरी तरह से शुद्ध नहीं है। कहीं 60 प्रतिशत, कहीं 70 प्रतिशत, कहीं 80 प्रतिशत आदि आदि। कुछ न कुछ उसमें कमियां त्रुटियां गलतियां अवश्य हैं। इसका कारण यह है, कि वे संप्रदाय, मनुष्यों द्वारा आरंभ किए गये हैं। मनुष्य अल्पज्ञ है इसलिए उससे गलती होने की पूरी संभावना होती है। और इसी कारण से भिन्न–भिन्न संप्रदाय में बहुत सी गलतियां हैं, कमियां हैं, त्रुटियां हैं। ये संप्रदाय एक दूसरे के विरोधी भी हैं। जब दो संप्रदाय एक दूसरे के विरोधी हों, तो दोनों सच्चे नहीं हो सकते।

''जो वेदों की विद्या है, वह सर्वोत्तम एवं पूर्ण सत्य है। इसका कारण यह है, कि वेदों का उपदेश करने वाला स्वयं साक्षात परमात्मा है।'' वह सर्वज्ञ है। ''उसके सर्वज्ञ होने से, उसके ज्ञान में कहीं कोई त्रुटि न्यून्ता भ्रांति या संशय नहीं है। इसलिए हम ईश्वर के उपदेश–वेदों पर पूरा विश्वास करते हैं, और सभी बुद्धिमान लोगों को करना चाहिए।''

अतः वेदों और वेदों के आधार पर ऋषियों ने जो ग्रंथ बनाए, वे बिन्कुल सत्य हैं। उनमें 100 प्रतिशत सत्य विद्या मिलती है। ''जिसे पूर्ण सत्य विद्या जाननी हो, वह वेदों और ऋषियों के ग्रंथों का अध्ययन करे। जो ऐसा करेगा, उसका बहुत उत्तम कल्याण होगा। उसके सारे दुख छूट जायेंगे। उसे सर्वोत्तम सुख की प्राप्ति होगी। उसका जन्म मरण से छुटकारा हो जाएगा। और वह परमात्मा के पूर्ण आनंद की प्राप्ति करेगा।''

''ऐसी वेदों की उत्तम अध्यात्म विद्या से व्यक्ति को संसार के भौतिक साधन भी मिल जाते हैं, भोजन वस्त्र मकान आदि सुविधाएं, तथा यात्रा के साधन सम्मान इत्यादि ये सब भी मिल जाते हैं। और विद्या का विशेष आनंद भी मिलता है। फिर भौतिक साधनों तथा अध्यात्म विद्या, इन दोनों की सहायता से उस आत्मा का मोक्ष भी हो जाता है। इसलिए जो पूरा लाभ उठाना चाहता हो, वह वेदों की अध्यात्म विद्या को प्राप्त करें, और फिर दूसरों को भी सिखाए।''

तप क्यों व कैसे?

—डॉ0 सत्यदेव सिंह

हे श्रेष्ठ मनुष्य! तुम अपने अन्दर अग्नि रूप परमेश्वर को प्रज्वलित करो। क्योंकि वह ही अग्रणी अग्नि है ज्ञान, कर्म और उपासना की। वह उपासक के पवित्र हृदय में स्थित होती है। वह सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि देवों का समन्वयक है। वह शरीर रूपी रथ में इन्द्रियों का भी समन्वयक है। वेद मन्त्र इस प्रकार से है—

यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समीधिरे।
इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि होता यजथाय सुक्रतुः ।।

(ऋ0 ५.११.२)

(O man! You ignite the God within you. He is the first case and leading light for Gyan, Karma and Upasana. He is seated within the pute heart of the worshippers. He pervades Devas(Sun, Moon, Earth, etc) and is the coordinator of them. With his inspiration, we can coordinated the Indriyan of the body.)

तप के अर्थः हिन्दी भाषा के अन्तर्गत् ''तप'' शब्द के निम्नांकित अर्थ देखे जाते हैं।

1. **तप=तपस्याः** अर्थात् वह व्रत या नियम जिनसे शरीर या चित्त(मन) को कष्टप्रद दशाओं में रखकर शुद्ध या निर्मल तथा सांसारिक विषयों से निवृत्त किया जाता है।
2. **तप=शरीर को तपाना (तपस्या करना):** तात्पर्य कि स्वेच्छा से शारीरिक—कष्ट सहते हुए इन्द्रियों तथा मन को वश में रखना और यम—नियम आदि का पालन करना।
3. **तप=प्रायश्चित के लिए कठोर आचरणः** अर्थात व्यावहारिक जीवन में किसी व्यक्ति द्वारा अपने किये हुए अपराध या पापकर्म के लिए स्वेच्छा से जाने वाला ऐसा कठोर आचरण, जिससे शरीर को कष्ट होता हो और स्वयं के मन को शान्ति मिलती हो।
4. **तप=कठिन परिश्रमः** सर्दी—गर्मी सहने की क्रिया तथा शरीर व इन्द्रियों पर नियन्त्रण।
5. **तप=धर्म का द्वितीय स्कन्धः** छान्दोग्य उपनिषद (२/२३/१) के अनुसार धर्म की तीन शाखायें(स्कन्ध) बताये गये हैं, उनमें ''तप'' को द्वितीय स्कन्ध बताया गया है।
6. **तप=कष्ट सहिष्णुताः** जब कोई साधक/व्यक्ति अपने वर्ण, आश्रम, परिस्थिति और योग्यतानुसार अपने कर्तव्य कर्म करते समय, जो शारीरिक या मानसिक कष्ट सहता हुआ आगे बढ़ता है, तो वही ''तप'' या तपस्या कहलाता है।

अभिप्रायः कर्तव्य को निरंतर करते रहना तप है। जो समाहित चित्तवाले साधक है, जिसमें वैराग्य भावना बलवत्तर है, उनके लिए योगदर्शन का समाधि पाद है। वे कुछ संकेत पाकर ही आगे बढ़ जाते हैं। परन्तु जो विक्षिप्त चित्तवाले हैं, उनके लिए बहिरंग साधनों का अनुष्ठान जरुरी है। उनके लिए योगदर्शन का साधन पाद है, जो क्रमिक हैं।

बहिरंग साधन में प्रथम क्रिया योग साधन है तप क्रिया योग के लिए प्रथम साधन है, इसलिए सूत्र में महर्षि व्यास ने सर्वप्रथम उसे स्थान दिया है। सूत्र इस प्रकार है—''तपः स्वाध्याययेश्वर प्राणिधानानि क्रियायोगः।।'' (योग १/२)

अर्थात् तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये तीनों मिलकर क्रियायोग कहलाते हैं। जिन कार्यों, में जिस व्यवहार में, जिस कर्म में योग हो–साधना हो, उसे क्रियायोग कहते हैं। जिसका आचरण व्यवहार ही योगसाधना बन जाये, वह क्रियायोग है। क्रियायोग में साधक के क्रियाकलाप अर्थात् खान–पान, रहन–सहन, चाल–ढाल, उठना– बैठना, लेना–देना, आदि सब कुछ योगमय बन जाता है। क्रियायोग में पहला साधन है तप। जीवन में आगे बढ़ने व अपना लक्ष्य सिद्ध करने के लिए तप का बहुत अधिक महत्व है। इसीलिए अथर्ववेद में कहा गया है–''दिवमारुहत् तपसा तपस्वी'' (अथर्व १३/२/२५)

अर्थात् तपस्वी(तपसा) तप से (दिवम्) ऊपर (आरूहत) उठता है। इसका मतलब है कि जीवन में प्रगति करनी है तो तप करना अनिवार्य है। संसार के सभी महापुरुषों ने तप को अपनाया और प्रगति के शिखर पर आरूढ़ हो गये।

कुछ लोगों ने तप को ठीक नहीं समझा। कोई चारों ओर अग्नि प्रकट करके उसमें बैठने को तप कहते हैं। कोई अपना हाथ ऊपर उठाकर खड़े रहने को तप मानता है। कोई कॉटों पर लेटे रहने को तप मानता है। कोई गड्ढ़ा खोद कर उसी में बैठे रहने को तप समझते हैं। कोई अधिक भूखे रहने को तप कहते हैं। ये सारे तप के विकृत दूषित भृष्ट रूप हैं।

आर्ष शास्त्रों में कहा गया है कि–''तप स्विष्टकृत्''। तप मनुष्य का कल्याण करने वाला होता है। योगदर्शन और गीता के अनुसार–''द्वन्द्वसहनं तपः'' अर्थात् द्वन्दों को सहन करना ''तप'' है।

अब समझना है कि द्वन्द्व क्या है? भूख–प्यास, सर्दी–गर्मी, सुख–दुख, हानि–लाभ, मान–अपमान, स्तुति–निन्दा, अनुकूल–प्रतिकूल, को प्रसन्न चित्त से सहन करना तप है। संस्कृत भाषा में ''तप संतापे'' धातु से तप शब्द बनता है। अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए जो भी कष्ट आयें, अवरोध आयें, उनको सहज–स्वभाव से सहन करना तप है। धर्म और सत्य के मार्ग पर चलते हुए विघ्न–बाधाओं, कष्ट–क्लेशों, उत्थान–पतन, जय–पराजय, जन्म–मृत्यु को समभाव में सहन करना तप है। महर्षि दयानन्द जी के शब्दों में–जैसे सोने को अग्नि में तपा कर निर्मल कर देते हैं, कुन्दन बना देते हैं, वैसे ही आत्मा और मन को धर्माचरण और शुभ गुणों के आचरण रूप से व उपर्युक्त द्वन्द्व सहन रूप से निर्मल–स्वच्छ कर देना तप है।''

महाभारत में यक्ष ने जब युधिष्ठिर से कुछ प्रश्न किया तो उन प्रश्नों में एक प्रश्न यह भी था कि–''तपः कि लक्षणम्''?–तप का क्या लक्षण है?

महाराज युधिष्ठिर ने उत्तर दिया– ''तप स्वधर्म वर्तित्वम्।''

ये यक्ष। अपने कर्तव्य कर्म को निरन्तर करते रहना ही तप है, चाहे कितनी भी बाधायें–रूकावटें क्यों न आयें।

महर्षि व्यास योगदर्शन में भाष्य करते हुए कहते हैं–''नातपस्विनो योगः सिद्धयति।''–जो तपस्वी नहीं हैं, जो सहनशील नहीं हैं, जो परिश्रमी नहीं हैं, उसे योग कभी सिद्ध नहीं होता क्योंकि परिश्रम बिना सफलता नहीं मिल सकती। जो लोग उन्नति के अभिलाषी हैं उन्हें अपने जीवन में तप पर प्रधान बल देना होगा।

तप करने से जन्म–जन्मान्तर के अविद्या, अस्मिता, राग–द्वेष आदि क्लेशों की वासनाओं की मलिनता छिन्न–भिन्न होती है। तप का कारण बंधन के कारण को धीरे–धीरे खोलती है। दूसरी बात यह है कि तप अपनी सामर्थ्य से अधिक नहीं करना चाहिए अन्यथा शरीर की धातुओं में वैषम्य उत्पन्न हो जाने से साधक रोगी

हो जाता है। तप इस प्रकार करना चाहिए जिससे साधक का चित्त सदा प्रसन्न बना रहे और उद्वेग पैदा न हो।

तत्तिरीय आरण्यक प्रपाठक १०, अनुवाक ८ में कहते है–

''ऋतं तपः सत्यं तपः शान्तं तपो, दमस्तपः
शमस्तपः दानं तपो यज्ञस्तपो बह्म भूभवः
स्वर्बह्म तदुपासवैतत्तपः।''

अर्थात्: (ऋतं) शाश्वत–यथार्थ का ग्रहण, (सत्य) सत्य मानना तथा बोलना, (श्रतं) क्षेत्रादि इन्द्रियों को दुष्टाचार से रोककर श्रेष्ठाचार में लगाना, (शान्त) क्रोध आदि को त्यागकर शांत बने रहना, (दमः) अपनी इन्द्रियों का दमन करना अर्थात् दुष्कर्मों से बचाकर सुकर्मों में लगाना, (शमः) अपने मन का सदा शमन करना अर्थात् बुरे नकारात्मक विचारों, काम–क्रोध आदि से सदा बचाना और अच्छे विचारों तथा स्वभाव में लगाना–सदा शांत, सरल, सौम्य बने रहना, (दान) विद्या आदि सब शुभ गुणों को धारण करना, जितने भी धन, अन्न, वस्त्र आदि लोक कल्याण के लिए श्रद्धा और प्रेम से प्रदान करना, (ब्रह्मज्ञान) वेद ज्ञान के प्रकाश से स्वयं को तथा अन्यों के हृदय को प्रकाशमान करना, (ब्रह्म उपासना) यथाशक्ति योगाभ्यास–प्राणायाम के साथ एक तत्व बह्म की उपासना करना, ये सब कर्म करना ''तप'' कहलाता है।

तप का फलः योगदर्शन के साधनपाद के सूत्र संख्या–४३ के अनुसार तप के अनुष्ठान के द्वारा अशुद्धि का क्षय होने पर शरीर और इन्द्रियों की सिद्धि होती है। तप करने से हमारे अन्दर बाहर की अशुद्धि अर्थात् मल–विक्षेप–अवरोध–१४ प्रकार के विघ्न–उपविघ्न दूर हटते हैं और शरीर तथा मन में विशेष निखार आता है और साधक स्वस्थ्य, सबल, सशक्त तथा सामर्थ्यवान बनता है। तप से साधक के शरीर में वह शाक्ति उत्पन्न हो जाती है, जिसमें वह दीर्घकाल तक एक आसन पर बैठकर प्राणायाम और ईश्वर का ध्यान कर सकता है। तप करने वाला साधक मानसिक क्षोभ से दूर हो जाता है, वह अपनी वासनाओं को तनु बनाकर (क्षीण करके) दग्धबीजभाव की अवस्था में ले जा सकता है। वेद में यह आदेश दिया गया है कि तपस्वी व्यक्ति/साधक ही ईश्वर साक्षात्कार कर सकता है, दूसरा नही। ऋग्वेद के नवें मण्ड़ल, सूक्त संख्या–८३ का मन्त्र १ व २ इस प्रकार है–

''पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते श्रृतास
इद्वहन्तस्तत्समाशत।।१।।
तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे.....।।२।।
(ऋ0 ९।८३।१–२)

इस वेद मन्त्र का भावार्थ इस प्रकार है कि ''हे ब्रह्मण्ड और वेदों का पालन करने वाले प्रभु! आपने अपनी व्याति से संसार के समस्त अवयवों को व्याप्त कर रखा है। आपका जो व्यापक पवित्र स्वरुप है, उसको ब्रह्मचर्य, सत्यभाषण, शम–दम, योगाभ्यास सत्संग, तपश्चर्या आदि से रहित जो अपरिपक्व आत्मा(व्यक्ति) है, वह उस तेरे स्वरुप को प्राप्त नहीं होता है और जो पूर्वोक्त तप या तपश्चर्या से शुद्ध हैं, वे ही इस तप का आचरण करते हुए उस तेरे शुद्ध चैतन्य स्वरूप (सच्चिदानन्द) को अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं।

इसलिए शरीर, इन्द्रियों और मन से सदा श्रद्धापूर्वक तप का अनुष्ठान प्रत्येक साधक को करना चाहिए।

दान दाताओं की सूची 1 अगस्त 2020 से 30 अप्रैल 2021 तक

क्र.	नाम	दान राशि
1	श्री सी.एल. व श्रीमती चन्द्रकांता नागपाल जी, पानीपत	11000
2	श्रीमती प्रीती पाहवा जी, नई दिल्ली	1100
3	श्रीमती दिव्या बब्बर जी, गुडगाँव	5000
4	श्री वरूण बब्बर जी, गुडगाँव	5000
5	श्री जगदीश चन्द्र कपूर जी, लुधियाना	5000
6	श्रीमती दर्शन रानी कपूर, लुधियाना	5000
7	श्री धर्मवीर गुप्ता, दिल्ली	5000
8	श्रीमती एस0 चड्ढा, दिल्ली	10000
9	श्री राजीव कुमार जी, देहरादून	3100
10	श्री अश्विन बब्बर जी, गुडगॉव	21000
11	श्रीमती सुरेन्द्र अरोड़ा जी, देहरादून	5000
12	श्री मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून	1100
13	सीताराम जिन्दल फाउण्डेसन	15000
14	श्री विजय सचदेवा जी, देहरादून	5000
15	माताजी कृष्णा माटा, देहरादून	25000
16	श्रीमती सुरेन्द्र अरोड़ा जी, दे.दून	5000
17	श्री ओंकार सिंह आर्य, मेरठ	2100
18	श्री सूरज प्रकाश जी, नोयड़ा	1100
19	श्रीमती वेद कुमारी वाधवा जी, दिल्ली	10000
20	श्री सूरज प्रकाश चावला जी, बैंगलौर	11000
21	श्री मुकेश चौधरी जी, देहरादून	5000
22	श्री प्रेम प्रकाश शर्मा जी, देहरादून	5100
23	आचार्य अन्नपूर्णा जी, देहरादून	1000
24	श्रीमती सुरेन्द्र अरोड़ा जी, दे.दून	5000
25	श्री देवेन्द्र कुमार नेगी, मंडी हि.प्र.	1500
26	श्री कुल्दीप सिंह जी, देहरादून	1000
27	श्री संजय चौहान जी, देहरादून	2000
28	श्रीमती चन्द्र कान्ता जी, देहरादून	1100
29	माता स्नेहलता खट्टर जी, दे.दून	5000
30	श्री सत्यवीर नागर जी, दिल्ली	3100
31	कृष्णा छाबड़ा जी, दिल्ली	3100
32	शीला देवी जी, फरीदाबाद	2000
33	श्री रामभज मदान जी, दिल्ली	25000
34	श्री रमेश टांगड़ी जी, देहरादून	2000
35	श्री जगदीश चन्द्र जी,गाजियाबाद	25000
36	श्री जितेन्द्र सिंह तोमर जी, दे.दून	2100
37	आर्य उपप्रतिनिधि सभा देहरादून	1100
38	ब्रि0 एस. के. अम्बा जी, दिल्ली	5100
39	श्रीमती निधि सचदेवा जी, गाजियाबाद	5000
40	श्रीमती सुप्रिया घई जी, देहरादून	5000
41	श्रीमती वेद कुमारी जी, चण्ड़ीगढ़	20000
42	श्री धीरेन्द्र मोहन सचदेवा, दे.दून	2100
43	श्री कुल्दीप सिंह चौहान जी, दे.दून	2100
44	श्री केशर सिंह जी, तपोवन	1100
45	श्री सुधीर गुलाटी जी, देहरादून	3100
46	श्रीमती चमन देवी, देहरादून	1000
47	श्रीमती मोहिनी अरोड़ा, दिल्ली	2100
48	श्रीमती धर्म देवी जी, दिल्ली	1000
49	श्री रणजीत राय कपूर जी, दे.दून	1000
50	श्री सुरेन्द्र छिब्बर जी, तपोवन	1000
51	श्री रामकिसन मलिक, पानीपत	1100
52	केवल सिंह आर्य, पानीपत	1100
53	श्री सुभाष आर्य, हरियाणा	1100

54	आर्य समाज सैनिक विहार, दिल्ली	5100
55	श्री इन्द्र अरोड़ा जी, गाजियाबाद	1000
56	नागरिक कल्याण विकास ट्रस्ट, दे.दून	5100
57	श्री महेश शर्मा जी, देहरादून	1100
58	श्रीमती मंजू शर्मा जी, देहरादून	1100
59	श्री प्रवीण कुमार, मुजफ्फरनगर	2100
60	श्री अनिल कुमार, मुजफ्फरनगर	1100
61	श्रीमती एस0 चड्ढा, दिल्ली	25000
62	माता सुदेश धवन, तपोवन	5100
63	श्री पंची राम, देहरादून	1100
64	श्री अशोक वर्मा जी, देहरादून	1100
65	श्री विपिन बंसल जी, आगरा	1100
66	श्री राजेन्द्र छाबड़ा जी,	1000
67	स्वामी नित्यानन्द जी, देहरादून	1000
68	श्री गजराज जी, नोयड़ा	1000
69	श्री सूरज प्रकाश चावला जी, बैंगलौर	5100
70	डा0 सूदीप जी, देहरादून	5000
71	श्रीमती पारूल जी, देहरादून	1000
72	अनुपमा जी, देहरादून	2000
73	माता जगवति जी, देहरादून	1000
74	श्री सूरत राम शर्मा जी, तपोवन	1000
75	श्री ज्ञान चन्द अरोड़ा, तपोवन	5000
76	श्री ब्रह्म मुनि जी, शामली	1000
77	श्री रमेश चन्द्र आर्य, दिल्ली	2100
78	श्री रमेश चन्द्र आर्य, दिल्ली	1200
79	श्री रोहित खुराना, मुम्बई	5000
80	श्री नरेन्द्र आर्य व सुदेश आर्या जी, यमुनानगर	10000
81	श्री वेदपाल आर्य, सलारु	2100
82	श्री रामानन्द शर्मा, देहरादून	1100
83	श्री अमरपाल सिंह, सहारनपुर	1000
84	श्री कृष्णापाल जी, सहारनपुर	2100
85	श्री राजेन्द्र छाबड़ा जी, रोहतक	5100
86	श्री रणजीत राय कपूर जी, दे.दून	1000
87	श्री विजेश गर्ग, तपोवन	1100
88	श्री कृष्ण लाल पाल जी, तपोवन	1000
89	डा0 तत्वदर्शी जी, देहरादून	1000
90	श्री महेन्द्र सिंह चौहान, देहरादून	1000
91	श्री गोविन्द सिंह भण्ड़ारी, बागेश्वर	1100
92	श्री भव्य आर्य, दिल्ली	2100
93	श्री दीपक वर्मा जी, फरीदाबाद	20000
94	माता स्नेहलता खट्टर जी, दे.दून	2000
95	श्री विजय कुमार आर्य जी, कीरतपुर	10000
96	श्रीमती अंशु गोयल जी, कीरतपुर	10000
97	श्री तरूण गोयल जी, कीरतपुर	10000
98	श्रीमती मलिका गोयल जी, कीरतपुर	10000
99	मास्टर विराज गोयल जी, कीरतपुर	10000
100	श्री अभिनव कम्बोज जी, देहरादून	5001
101	प्रमिला महेन्द्ले जी, फरीदाबाद	10000
102	विमल सचदेवा जी, फरीदाबाद	3100
103	श्री राजकुमार भण्ड़ारी जी, देहरादून	1100
104	स्वामी चित्तेश्वरानन्द जी, देहरादून	11000
105	श्रीमती मनोरमा कपूर जी, हरियाणा	3100
106	आचार्य आशीष जी, तपोवन	15000
107	श्रीमती आशा रानी बत्रा, अम्बाला	5100
108	श्रीमती सुमेधा खुराना, देहरादून	5100
109	श्री संजीव ओबेराय, फरीदाबाद	5100
110	श्री अरूण गुप्ता, हरियाणा	2100
111	श्री मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून	1100
112	श्रीमती सुरेन्द्र अरोड़ा जी, देहरादून	5000
113	स्व0 माता संतोष रहेजा जी, लुधियाना	50000
114	श्री जे0के0 गुप्ता जी, देहरादून	2100
115	श्री कृष्ण लाल डंग जी, पोंटा साहिब	11000

116	आचार्य आशीष जी, तपोवन	5100
117	श्रीमती अनीता अरोड़ा, तपोवन	1100
118	श्रीमती सुरेन्द्र अरोड़ा जी, देहरादून	5000
119	आचार्य आशीष जी, तपोवन	11000
120	सीताराम जिन्दल फाउण्डेसन	15000
121	श्री संजय चौहान जी, देहरादून	1100
122	श्री जय प्रकाश सिंह, देहरादून	2100
123	श्री राजीव कुमार जी, देहरादून	2000
124	मधु जी, दिल्ली	2100
125	पुष्पा आर्या जी, दिल्ली	1000
126	श्री कुल्दीप सिंह, देहरादून	1100
127	श्री दीपक गोयल जी, देहरादून	100000
128	सुदेश गोयल जी, देहरादून	10000
129	श्रीमती सुरेन्द्र अरोड़ा जी, देहरादून	5000
130	श्री नरेन्द्र कालरा जी, दिल्ली	5100
131	श्री ओंकार सिंह आर्य, देहरादून	1000
132	श्री तुलसी राम जी, पौड़ी गढ़वाल	5100
133	श्री संजय प्रताप सिंह, देहरादून	2100
134	सरिता धवन जी दिल्ली	35000
135	श्रीमती सुरेन्द्र अरोड़ा जी, देहरादून	5000
136	श्री जगमोहन सिंह, देहरादून	3100
137	श्री काशी खंडूजा जी, देहरादून	5500
138	श्री गुलशल खंडूजा जी, देहरादून	5500
139	श्री बी.लाल. जी, देहरादून	11000
140	श्री सोहन लाल गर्ग, देहरादून	2100
141	श्री दीपक पॉलेजा, मुम्बई	1100
142	श्री रामभज मदान जी, दिल्ली	2100
143	श्री अरविंद जी, देहरादून	2100
144	श्री एस0पी0 शर्मा जी, नोयड़ा	1100
145	श्री ओम आनन्द मुनि जी, तपोवन	2100
146	श्रीमती रजनी बाला जी, हरियाणा	1100
147	श्रीमती उषा सेठी जी, दिल्ली	1100
148	श्रीमती किरण सेठी जी, दिल्ली	1100
149	स्व0 माता कैलाश मारवाहा, दिल्ली	5000
150	निर्मला भारद्वाज जी, देहरादून	1000
151	श्रीमती सुरेन्द्र अरोड़ा जी, देहरादून	5000
152	श्री पी.के. वालिया जी, देहरादून	11000
153	श्री ओ.पी. गुप्ता जी, देहरादून	11000
154	श्री नरेन्द्र आहूजा जी, देहरादून	11000
155	श्री दीपक गुप्ता जी, देहरादून	5100
156	श्री गुलशन माकिन जी, देहरादून	1100
157	श्री विजेन्द्र सिंह जी, देहरादून	11000
158	श्री प्रवीण आर्य जी, हरियाणा	1100
159	मकसत टैक्नोलॉजी प्रा0लि0, दे.दून	100000
160	श्री इन्द्र कुमार जी, कानपुर	5000
161	श्री जगत जी, फरीदाबाद	5000
162	श्री अशोक गुट जी, हरिद्वार	11000
163	श्री रामकिशन मालिक, रोहतक	3100
164	श्री धनवीर जी, कानपुर	5000
165	श्रीमती सुरेन्द्र अरोड़ा जी, देहरादून	1000
166	श्री अग्निहोत्री धर्मार्थ ट्रस्ट, दिल्ली	11000
167	स्व0 श्री दर्शन कुमार अग्निहोत्री जी, की स्मृति में	10000
168	जनकल्याण ट्रस्ट, दिल्ली	10000
169	श्री सुनील जी, फरीदाबाद	2000
170	श्रीमती राजेश्वरी देवी जी, हरिद्वार	2100
171	शारदा देवी सत्यपाल चैरिटेबल ट्रस्ट	5000
172	श्री ए0एस0 वर्मा, नौयडा	1100

MUNJAL SHOWA

हाई क्वालिटी शॉकर्स

TPM Certified

ISO / TS - 16949 - 2002 Certified

ISO - 14001 Certified

OHSAS - 18001 Certified

मुंजाल शोवा लिमिटेड भारत की प्रमुख शॉक एब्जॉर्बर्स बनाने वाली कंपनी है जिसकी रेंज फ्रन्ट फोर्कस, स्ट्रट्स (गैस चार्जड और कन्वेन्शनल) और गैस स्प्रिंगस की टू व्हीलर/फोर व्हीलर उद्योगों को उपलब्ध कराती है। कंपनी गुणवत्ता और सुरक्षा के उच्चतम मानकों के अनुरूप अपने सभी उत्पादों का निर्माण करती है। कंपनी के उत्पाद आरामदायक और सुरक्षित सवारी देते हैं और ये टिकाऊ और विश्वसनीय भी हैं। मुंजाल शोवा लिमिटेड, QS 9000, TS–16949, ISO 14001, OHSAS 18001 और TPM प्रमाणित कंपनी है। मुंजाल शोवा के तीन मैन्युफैक्चरिंग प्लॉट हैं – गुड़गाँव, मानेसर (हरियाणा) और हरिद्वार (उत्तराखण्ड)। मुंजाल शोवा लिमिटेड का शोवा कार्पोरेशन जापान के साथ तकनीकी और वित्तीय सहयोग करार है ।

हमारे उत्पाद

- स्ट्रट्स/गैस स्ट्रट्स
- शॉक एब्जॉर्बर्स
- फ्रन्ट फोर्कस
- गैस स्प्रिंगस/विन्डो बैलेन्सर्स

हमारे ख्यातिप्राप्त ग्राहक

Hero HONDA HONDA MARUTI SUZUKI YAMAHA

मुंजाल शोवा लिमिटेड

प्लॉट नं. 9–11, मारुति इंडस्ट्रियल एरिया
गुड़गाँव–122015, हरियाणा
दूरभाष :
0124–2341001, 4783000, 4783100
ईमेल : msladmin@munjalshowa.net
वेबसाइट : www.munjalshowa.net

MUNJAL SHOWA

डाक पंजीयन UA/DO/DDN/75/2021-2023 समाचार पत्र पंजीयन 51900/88

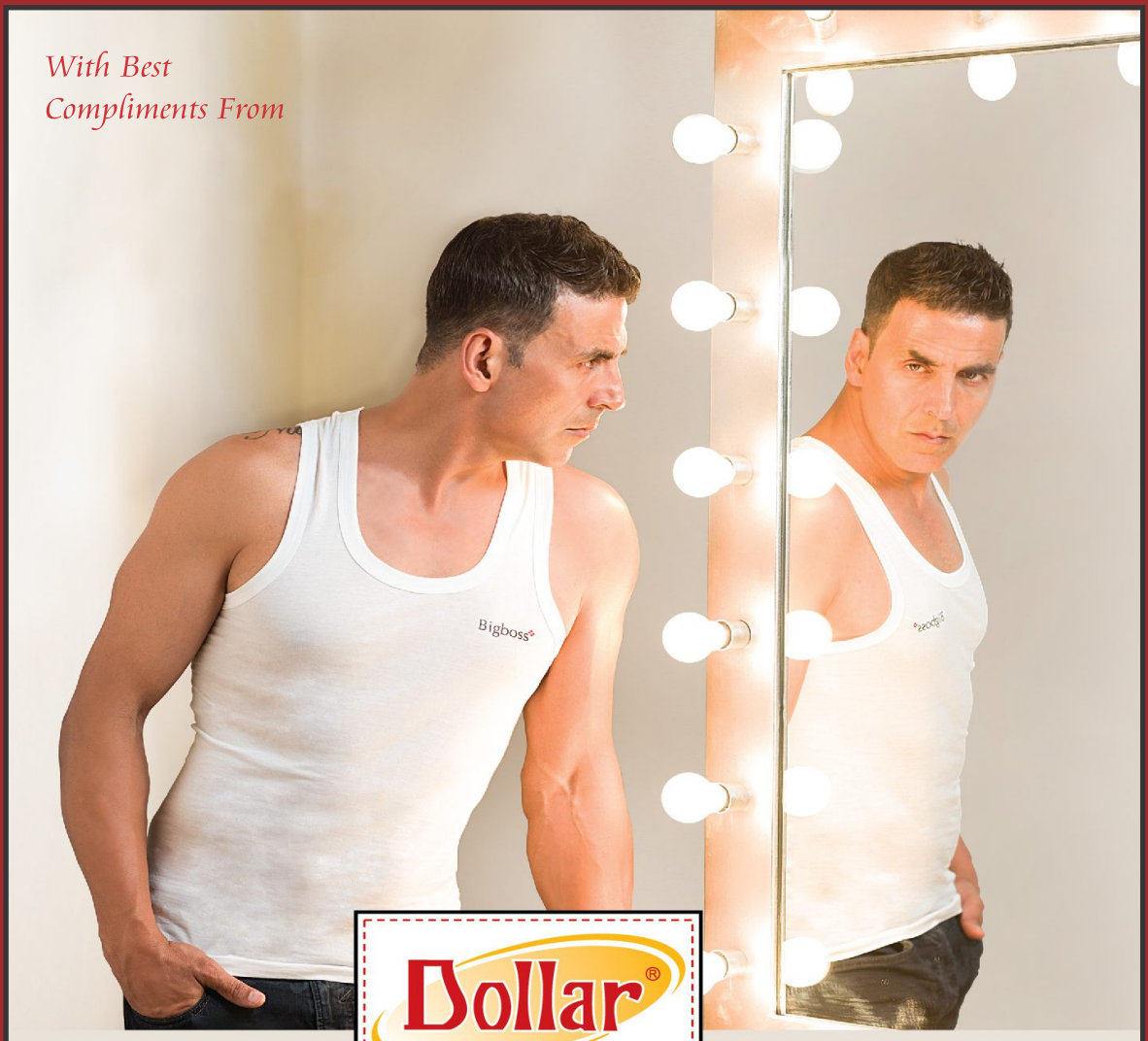

वैदिक साधन आश्रम सोसाइटी के लिए प्रकाशक मुद्रक प्रेम प्रकाश द्वारा सरस्वती प्रेस, 2, ग्रीन पार्क, निरंजनपुर, देहरादून–248001 (उत्तराखण्ड) से मुद्रित एवं वैदिक साधन आश्रम सोसाइटी (रजि.), नालापानी, देहरादून (उत्तराखण्ड) से प्रकाशित।
संपादक– कृष्णकान्त वैदिक शास्त्री

सरस्वती प्रेस, देहरादून, ई-मेल : akhilg333@gmail.com